5104199

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय

का

संक्षिप्त इति

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, कलकत्ता द्वारा

संकलित

प्रकाशकः—

मंत्री, मालवा जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा

बड़नगर, मालवा।

प्राप्ति स्थान—

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता।

मालवा जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, बड़नगर, मालवा।

आ. श्रीकैलाससागरसूरि ज्ञानमन्दिर

श्रीमहावीर जैन आराधना केन्द्र

कोबा (गांधीनगर) पि. ३८२००९

मूल्य =)

श्रीगुरवे नमः

प्रस्तावना

संसार अनादि है। जीव और कर्म भी अनादि हैं एवं उनका मिलाप अनादि कालसे चला आ रहा है। कर्मोंसे मुक्त होना ही जीवके लिये मुक्ति प्राप्त करना है। इस मुक्तिके मार्गको जैन धर्म अनादि कालसे बतलाता आ रहा है। इस अनन्त और अनादि कालके प्रवाहमें नश्वर एवं अशाश्वत वस्तुओंका परिवर्तन सदा होता आया है, किन्तु शाश्वत वस्तु पर कालकी शक्ति नहीं चलती। धर्म—सत्य, नित्य, शाश्वत एवं सनातन है। जैसे १+१ सब समयमें दो ही था, है और रहेगा, वैसे ही, अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य्य एवं अपरिग्रह सदासे धमका मार्ग माना गया है और माना जायगा—इसमें फेरफार नहीं हो सकता। यही कारण है कि जितने तीर्थङ्कर हो गये हैं सबकी एक ही धर्मदेशना रही है।

जैनियोंमें मुख्य दो विभाग हैं—श्वेताम्बर व दिगम्बर। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु यह पंच परमेष्टि समस्त संप्रदायों व विभागों को मान्य है। सब सम्प्रदायवाले हिंसामें अधर्म मानते हैं, राग द्वेषको कर्मोंका बीज बतलाते हैं। सिर्फ जैन ही नहीं अन्यान्य मतोंमें भी राग द्वेषको दुःखका कारण बताया है। जैन धर्ममें अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य्य अपरिग्रहको जैसा उच्च स्थान दिया है वैसा अन्य मतमें भी है। धर्माचार्य्यमात्र इन नियमोंको पालन करनेको कहते हैं। गृहस्थ जीवनमें भी इनकी उपादेयता स्पष्ट जाहिर है। जिस राष्ट्र, जिस देश व जिस समाजमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रहके गुणोंका अधिक समावेश है वह राष्ट्र, वह देश, वह समाज नैतिक उन्नतिके साथ-साथ सांसारिक उन्नतिके भी उच्च शिखर पर आरूढ़ हो सकता है।

तेरापंथी सम्प्रदाय आधुनिक है पर इसके तत्त्व नवीन नहीं हैं। वास्तवमें जो नित्य, सत्य, शाश्वत जैन तत्त्व हैं वही इस सम्प्रदायके तत्व हैं। शताब्दियोंके पुंजीभूत विकारोंको हटाकर जैनधर्मके सत्य, शाश्वत, सनातन

स्वरूपको प्रकाशमें लानेका बीड़ा श्री श्री १००८ श्री भिखनजी स्वामीने उठाया। उनके परवर्ती स्वनामधन्य आचार्य्यगण अपने आचार व प्ररूपणासे जैनधर्मके महत्व, विशालत्व, निर्दोषत्व, अविसंवादित्व संसारके सामने रख तीर्थङ्कर भगवानके बचनोंको आदरके साथ अंगीकार करनेके लिये लोगों को उद्‌बुद्ध करते आये हैं एवं कर रहे हैं।

तेरापंथी मतकी उत्पत्ति व उसकी मान्यताके सम्बन्धमें बहुत-सी भ्रान्तधारणा लोक समाजमें फैली हुई है। उन भ्रान्त धारणाओंको दूर करनेके लिये इस पुस्तिकाका प्रकाशन किया जाता है। जन्म-जरा-मृत्यु-मय संसारसे मुक्ति पानेका उपाय ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं दान, शील, तप, और भावना है। तेरापंथी सम्प्रदायके साधुवर्ग उपदेश द्वारा, शास्त्रीय प्रमाण द्वारा व अपने जीवन-यापन-प्रणाली द्वारा इन उपायोंको किस प्रकार कार्यरूपमें लाया जा सकता है यह प्रत्यक्ष दिखा रहे हैं।

इस संक्षिप्त इतिहासके पहिले अङ्गरेजी भाषामें दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी भाषा भाषियोंके लिये यह हिन्दी संस्करण है। इस मतका, इसके पूजनीय आचार्योंका व इसके कुछ तपस्वी मुनिराजोंका संक्षिप्त परिचय मात्र इसमें दिया गया है। तेरापंथी साधुओंका आदर्श जीवन, उनका त्याग, उनका वैराग्य उनका ज्ञान उनकी विद्वता, उनकी प्रतिभा आदि गुणराशिका प्रकृष्ट परिचय उनके दर्शन व सेवासे मिल सकता है। पाठकगणसे निवेदन है कि दूसरोंके द्वेष पूर्ण प्रचारसे अपने विचारोंको दूषित न कर सत्यका अनुसंधान करें व गुणीजनोंका समुचित समादर कर उनसे उचित लाभ उठावें।

अन्तमें निवेदन है कि छपाईका कार्य्य शीघ्रतासे करानेके कारण भूल चूक रह जानी सम्भव है आशा है पाठक उनके लिये क्षमा करेंगे।

कलकत्ता
माघ बदी ५-१९९२

छोगमल चोपड़ा
अ० मंत्री, श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा।

श्रीजैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय
का
संक्षिप्त इतिहास।

प्रथम आचार्य्य श्री भीखणजी महाराज

श्रीजैन श्वेताम्बर तेरापन्थी मतके प्रवर्तक प्रातःस्मरणीय श्रीश्री १००८ श्री श्री भीखणजी स्वामीका जन्म आषाढ़ सुदी १३ सं० १७८३ (जुलाई १७२६ ई०) को मारवाड़ राज्यके कंटालिया ग्राममें हुआ था। उनके पिता का नाम बलूजी सुखलेचा तथा माताका नाम दीपांबाई था। साह बलूजी ओसवाल जातिके थे। वे बड़े ही सज्जन प्रकृतिके थे। दीपांबाई भी अपनी सरल और भद्र प्रकृतिके लिए प्रसिद्ध थीं। ऐसे ही पुण्यवान माता-पिताके घर स्वामी भीखणजीका जन्म हुआ था।

स्वामी भीखणजीको बाल्यावस्थासे ही धर्मकी ओर विशेष रुचि थी। उनके माता-पिता गच्छवासी सम्प्रदायके अनुयायी थे, इसलिये पहले पहल इसी सम्प्रदायके साधुओंके पास भीखणजीका आना-जाना शुरू हुआ। परन्तु वहां पर इनके हृदयकी प्यास न बुझी और सच्चे तत्वानुसंधानके लिये वे पोतियाबन्ध साधुओंके यहां गमनानुगमन करने लगे। बहुत दिनों तक वे उनके अनुयायी रहे परन्तु वहां भी उन्होंने बाह्याडम्बरकी अधिकता और सच्चे धार्मिक लगनका अभाव अनुभव किया। अतः उन्हें छोड़ कर वे जैन श्वेताम्बर स्थानकबासी सम्प्रदायकी एक शाखा विशेषके आचार्य श्रीरुघनाथजीसे भक्ति भाव करने लगे। जिनके हृदयमें वैराग्यकी तीव्र भावना स्थान पा जाती है उन्हें जब तक उस भावनाके अनुकूल संग नहीं मिलता, तब तक सच्चे मार्गका अनुसंधान करते ही रहते हैं। हृदयकी वैराग्य भावना जितनी ही अधिक तीव्र होती है, अनुसंधानका वेग भी उतना ही जोरदार रहता है। संसारके जितने भी बड़े-बड़े दार्शनिक, धर्म

प्रचारक तथा विज्ञान-वेत्ता आदि हुए हैं, उन्हें जब तक पूर्ण आत्म-तृप्ति न हुई अपने लक्ष्य तत्त्वोंपर गवेषणा करते रहे हैं। स्वामी भीखणजीके साथ भी ठीक यही हुआ और जिस सत्यकी खोजमें वे थे, वह जब तक उनके हाथ न आया तब तक वे उसके अनुसंधानमें लगे ही रहे।

जैन धर्म एक समय बहुत ही उन्नत धर्म था और राज धर्म होनेसे वह भारतव्यापी भी हो चुका था। एक समय था जब जैन धर्मकी विजय बैजयन्ती चारों ओर फैली हुई थी परन्तु राजनैतिक उलट फेरोंके कारण उसके अनुयायी क्रमशः ह्रास हो गये और धर्मप्रचारक शिथिल हो गये। काठमें घुन लग जाने पर जिस प्रकार वह सहसा दूर नहीं होता, उसी प्रकार पतन होने पर उत्थानके लिये एक महती शक्तिकी आवश्यकता होती है। जैन धर्मके अभ्युदयके लिये भी समय समय पर महामना सुधारक धर्मप्रचारकों द्वारा प्रयत्न होते रहे हैं। सं० १५३० के आस-पास श्री लुंका मेहता नामक एक सद्गृहस्थ हुए जिन्होंने जैन शास्त्रोंके वास्तविक रहस्य और अर्थका प्रचारकरना शुरू किया,परन्तु उनके कुछ समय बाद उनके अनुयायी कालके प्रभावसे शिथिलाचारी होते गये। और उनकी प्ररूपणाभी क्रमशः विकृत हो गई। बादमें लवजी नामक एक साधुने फिर शुद्ध प्ररूपण करने का प्रयत्न किया परन्तु वे भी शास्त्रीय आदेशोंको सर्वथा शास्त्रीय रूपमें प्रचार व पालन न कर सके। साधुके निमित्त बने हुये मकानातमें रहने वालेको स्थानक वासी कहते। ऐसा औद्देशिक मकानोंमें रहना जैन शास्त्रमें मना था। अतः लवजीने स्थानक वास छोड़ दिया और फुटे-टुटे मकान अर्थात् ढुंढोंमें रहना शुरू किया। इसलिए कालक्रममें इनका सम्प्रदाय 'ढुंढ़िया' कहलाने लगा। धीरे-धीरे ढुंढियोंमें २२ शाखायें हो गईं और हर एक शाखा वाले एक दूसरेसे अलग रहते और कुछ फेरफारके साथ धर्म-प्रचार करते रहे। इन्हीं २२ सम्प्रदायकी एक शाखाके आचार्य रुघनाथजीको भीखणजीने अपना प्रथम दीक्षा गुरु बनाया था।

आरम्भसे ही इस तरह विभिन्न धर्म-सम्प्रदाओंके संसर्गमें आनेसे

संचित अभिज्ञता तथा जन्मगत वैराग्य भावना होनेसे भीखणजीके हृदयमें संसार त्याग कर साधु मार्ग स्वीकार करनेकी महताकांक्षा तीव्र रूपसे उत्पन्न हुई। इस वैराग्य भावना और साधु होनेकी महताकांक्षाने इतना जोर पकड़ा कि स्वामी भीखणजी ने गृहस्थाश्रममें सस्त्रीक व्रत लिया कि वे सर्वथा शील पालन करेंगे, याने स्त्री प्रसंग न करेंगे। इसके साथ-साथ उन्होंने एकान्तरा उपवास करना भी शुरू किया। यह एक अपूर्व संयोग है, कि इसी समय उनकी पत्नी का भी देहावसान हो गया। भीखणजीका वैराग्य भाव अब अवाध गतिसे बढ़ने लगा और पूर्ण यौवनावस्थामें होते हुए भी उन्होंने घरवालोंकी एक न सुनी और पुनर्विवाह करनेका सौगंध ले लिया। एवं यथाशीघ्र दीक्षित होनेकी इच्छा प्रकट की। भीखणजीके पिताका देहावसान इससे पहिले ही हो चुका था केवल माताकी आज्ञा (अनुमति) लेना ही दीक्षाके लिये आवश्यक था।

भीखणजी जब गर्भावस्थामें थे तब उनकी माता दीपां बाईने सिंहका स्वप्न देखा था इससे उनकी धारणा थी कि उनका पुत्र अवश्य ही कोई प्रतिष्ठित महापुरुष होगा। इसलिए वे अपने एकमात्र पुत्रसे महती आशाएँ रखती थीं। भीखणजीको दीक्षाके लिए अनुमति लेनेका प्रसंग आया तब माताका स्नेह उमड़ आया और वह सिंह-स्वप्न जो उनके पुत्रकी भावी महानताका सूचक था उनकी आंखोंके सामने नाचने लगा। जो माता अपने पुत्रके लिए उच्चाशा पोषण कर रही थी और उसके भावी ऐश्वर्य्यकी कल्पना कर फूली न समाती थी—उस माताके सामने जब पुत्रके संसार-त्यागका प्रस्ताव आया तब तो अपनी सारी आशाएँ निष्फल होती देख कर माताका स्नेहमय हृदय और भी विचलित हो गया और अपने स्वप्नका हाल बताते हुए अनुमति देनेसे अस्वीकार कर दिया। दीपां बाईकी इस बातको सुनकर रुघनाथजीने उन्हें समझाते हुए कहा कि निश्चय ही उनका स्वप्न सत्य सिद्ध होगा और गृहत्यागी मुनि होने पर भी भीखणजी सिंह की तरह विजयी होकर गूंजेंगे। दीपांबाईको रघुनाथजीके इस उत्तरसे

सन्तोष मिला और उन्होंने पुत्रको प्रव्रजित होनेकी आज्ञा दे दी। रघुनाथजीने सं १८०८ में स्वामी भिखणजीको दीक्षित किया। दीक्षाके बाद प्रायः ८ वर्ष तक भीखणजी रघुनाथजीके साथ रहे और इस समयको उन्होंने अत्यन्त अध्यवसाय और एकान्त एकाग्रचित्तके साथ जैन सूत्रोंके अध्ययन और मननमें लगाया। शास्त्रोंके गम्भीर अध्ययनसे उन्हें ज्ञात हुआ कि तत्कालीन साधुवर्ग शास्त्रीय आदेशोंको सम्पूर्णतया पालन नहीं करते और न वे शास्त्रकी सच्ची व्याख्या करनेका साहस रखते हैं। भीखणजीने देखा कि तत्कालीन साधु अपने लिए बनाये हुए स्थानोंमें रहते हैं, उद्देशिक आहार लेते हैं, भिक्षाके नियमोंका समुचित पालन नहीं करते, और पुस्तकोंके समूह दीर्घकालतक बिना पडिलेहनाके रखते हैं, दीक्षा देनेके पहिले अभिभावकोंकी आज्ञा अनिवार्य नहीं समझते, वस्त्र पात्र तथा साधुके अन्य उपकरण आवश्यकता और शास्त्रीय प्रमाणसे अधिक संख्यामें रखते हैं, उनमें सच्चा आत्मदर्शन नहीं और न शुद्ध साधूचित आचार ही है। यह सब भीखणजीने शास्त्रीय अवलोकन और मंथनसे अच्छी तरह जान लिया। रघुनाथजीका उन पर अत्यधिक स्नेह था और इसलिए गुरुके सन्मुख उनके शिथिलाचारकी बातें रखनेमें भीखणजी पहिले पहल कुछ कठिनाई और संकोचका अनुभव करते थे। तथापि नाना प्रकारकी शंकाएँ उत्थापन और प्रश्न करते रहे और सच्चे रहस्यको जाननेकी उतकंठा दिखाते रहे। इतनेमें ही संयोगवश एक ऐसी घटना हुई जिसके बाद भीखणजीके भविष्य जीवनकी गति पलट गई। यह घटना स्वामीजीके भविष्य जीवनको उज्ज्वल बनाने वाली थी। मेवाड़में राजनगर नामक एक शहर है, वहां कि जनसंख्या काफी थी। उनमें रघुनाथजीके बहुतसे अनुयायी भी थे। इन अनुयायियोंमें अधिकांश महाजन थे और उनमें कुछको जैनशास्त्रोंके मर्मका अच्छा ज्ञान था। इन श्रावकोंको कई बातोंके सम्बन्धमें शंकाएं हो गयीं और उन्होंने रघुनाथजी तथा उनके साधुओंका आचार शास्त्रसम्मत न देख उन्हें बन्दना करना छोड़ दिया। भीखणजीकी बुद्धि बड़ी ही तीव्र थी

और दूसरोंपर उनकी बुद्धिका तत्क्षण प्रभाव पड़ता था। रघुनाथजीने इन श्रावकोंकी शङ्का दूर करनेके लिये भीखणजीको योग्य समझा और अन्य कई साधुओंके साथ उन्हें राजनगर भेजा। स्वामीजीने राजनगरमें चातुर्मास किया और अनेक युक्तियोंसे श्रावकोंको समझा कर पुनः बन्दना प्रारम्भ करवाई। श्रावकोंने बन्दना करना तो स्वीकार किया फिर भी उनके हृदयसे शङ्कायें दूर नहीं हुई और भीखणजीके युक्तिसे, उनके वैराग्य-मय जीवन और सत्‌मार्गपर उनको चलनेकी प्रतिज्ञाके प्रभावसे ही श्रावकोंने उन्हें बन्दना करना आरम्भ किया। उसी रातको भीखनजीको असाधारण ज्वरका प्रकोप हुआ। ज्वरकी तीव्र वेदनाने भीखनजीको अध्यवसायोंको पवित्र कर दिया। उन्होंने सोचा मैंने सत्यको झूठ ठहरा कर ठीक नहीं किया ! यदि इसी समय मेरी मृत्यु हो तो मेरी कैसी दुर्गति हो ! इसी प्रकार आत्म-ग्लानि और पश्चात्तापसे उनके हृदयका सारा मल धुप गया और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं इस रोगसे मुक्त हुआ, तो अवश्य पक्षपात रहित होकर सच्चे मार्गका अनुसरण करूंगा, जिनोक्त सच्चे सिद्धान्तोंको अङ्गीकार कर उनके अनुसार आचरण करनेमें किसी की खातिर न करूंगा। इस प्रकार एक दिव्य आन्तरिक प्रकाशसे उनका हृदय जगमगा उठा और बादका उनका सारा जीवन इसी आन्तरिक प्रकाशसे आलोकित रहा।

ये स्वामीजीकी असाधारण महानताके लक्षण थे। उनमें हठधर्मी या जिद न थी कि अपनी भूल मालूम होने पर भी उसे छुपाते या उसका पोषण करते। एक सच्चे मुमुक्षुकी तरह वे तो सत्यकी खोजमें लगे हुए थे। अतः जहां सत्यके दर्शन होते उसी ओर वह आगे बढ़ते। ऐहिक मान-सम्मान या पद-गौरवकी रक्षाका खयाल उन्हें तनिक भी न था। सत्यकी मर्य्यादाके सामने इनके लिये ये सब बातें नगण्य थीं। इसलिये जब उन्हें उस वखतके साधु समाजके शिथिलाचारका मालूम पड़ा तो उन्होंने उसका प्रायश्चित्त भी किया।

यह एक आश्चर्यकी बात है कि उपरोक्त प्रतिज्ञाके बाद ही भीखणजी का बुखार उतर गया। उन्होंने श्रावकोंसे कहा कि उनका कथन युक्ति-युक्त है और साधुवर्गका आचार व प्ररूपणा अशुद्ध है पर उन्होंने वचन दिया कि आचार्यको समझा कर शुद्ध मार्गकी प्रवृत्तिके लिये चेष्टा करेंगे। इससे श्रावक लोग उन पर विशेष श्रद्धालु बने। उन्होंने सत्यासत्यका निर्णय करनेके लिये फिरसे शास्त्रोंके गम्भीर अध्ययनका विचार किया। और ३२ सूत्रोंको ही दो दो बार खूब अच्छी तरहंसे विचार पूर्वक पढ़ा। अब रघुनाथजीका पक्ष शास्त्र सम्मत न होनेमें उन्हें तनिक भी शंका न रही।

भिखणजीने जिनोक्त मार्ग अङ्गीकार करनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी पर इससे पाठक यह न समझें कि उन्होंने रघुनाथजीके शिष्य न रहनेकी ठान ली थी अथवा किसी नये मतके आचार्य ही वे बनना चाहते थे। जहां सच्चा मार्ग हो वहां गुरु रूपमें या शिष्य रूपमें रहना उनके लिये समान था। आत्म-कल्याणका प्रश्न ही उनके सामने मुख्य था इसलिये शिष्य रह कर भी वे इसे प्राप्त कर सकते तो उन्हें कोई आपति न थी। इसी लिये रघुनाथजीकी पक्षको गलत समझ कर भी उन्होंने उसी समय रघुनाथजीसे अपना सम्बन्ध न तोड़ दिया। बल्कि उलटा उन्होंने यह विचार किया कि रघुनाथजीसे शास्त्रीय आलोचना करूंगा और उन्हें और उनके सम्प्रदायको हर प्रकारसे शुद्ध मार्ग पर लानेका प्रयत्न करूंगा। उनसे मिलनेके पहिले अपने भविष्यके सम्बन्धमें उन्होंने कोई निश्चय करना उचित न समझा। इस समय भिखणजीने जिस विनय और धीरजका परि-चय दिया वह अवश्य ही उनके आन्तरिक वैराग्य और धर्म भावनाओंका प्रतिबिम्ब था।

चातुर्मास समाप्त होने पर भिखणजी रघुनाथजीके पास गये और विनम्रता पूर्वक उनसे आलोचना शुरू की। उन्होंने कहा कि हम लोगोंने आत्म-कल्याणसे लिये ही घर-बारको छोड़ा है अतः झठी पक्षपात छोड़कर सच्चे मार्गको ग्रहण करना चाहिये। हमें शास्त्रीय बचनोंका प्रमाण मान कर

मिथ्या पक्ष न रखना चाहिये, पूजा प्रशंसा तो कई बार मिल चुकी है पर सच्चा मार्ग मिलना बहुत ही कठिन है, अतः सच्चे मार्ग को प्राप्त करनेमें इन बातोंको नगण्य समझना चाहिये। आपको इसमें कोई सन्देह न रहना चाहिए कि यदि आपने शुद्ध जैन मार्गको अङ्गीकार किया तो मेरे लिए आप पहिलेकी तरह ही पूज्य रहेंगे। परन्तु भिखणजीकी इस विनम्र चर्चा का रघुनाथजी पर कोई असर न हुआ वे पंचमआरे का प्रभाव कह कर ही उनकी बातें टालते रहे। स्वामी भीखणजी इस उत्तरसे सन्तुष्ट होने वाले न थे। उनकी दृष्टिसे इस दुषमकालमें सम्यक् चरित्र पालन करनेके उद्यममें कमी आनेके बदले और अधिक बल आना चाहिए था। भगवानने जो पंचम आरेको दुषमकाल बतलाया था उसका तात्पर्य यह न था कि इस कालमें कोई सम्यक धर्मका पालन ही न कर सकेगा पर उसका अर्थ यह था कि चरित्र पालनमें नाना प्रकारकी शारीरिक तथा मानसिक कठिनाइयां रहेंगी इसलिए चरित्र पालनके लिए बहुत अधिक पुरुषार्थकी आवश्यकता होगी। उन्होंने भगवान्‌महावीरका यहकथन पढ़ लियाथा कि जोपुरुषार्थहीन होंगे और साधु-प्रण पालनेमें असमर्थ होंगे वे ही समयका दोष बतला कर शिथिलाचारको छोड़ नहीं सकेंगे।

गुरु रघुनाथजीको जब हर प्रकारकी चेष्टा करके भी स्वामीजी ठीक पथपर न ला सके तब स्वामीजी स्वयं ही उनसे अलग हो गये और शुद्ध स्यंम मार्गपर चलनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। भिखणजीने बगड़ी शहरमें रघुनाथजीका संग छोड़ दिया और उनसे अलग विहार कर दिया। भारीमालजी आदि कई सन्त भी उनके साथ हो गये। इस प्रकार गुरु रघुनाथजीसे अलग होकर उन्होंने अपने लिये विपत्तियोंका पहाड़ खड़ा कर लिया। उस समय रुघुनाथजीकी अच्छी प्रतिष्ठा थी और उनके श्रद्धालु भक्तोंकी संख्या भी बहुत अधिक थी। भिखणजीके अलग होते ही रघुनाथ जीने उनका घोर विरोध करना शुरू किया। परन्तु भिखणजी इन सबसे विचलित होने वाले न थे। बगड़ीमें भिखणजीको स्थान न देनेका ढिंढोरा

पिटवा दिया गया पर तो भी भिखणजीने साधुओंके लिए निर्मित स्थानको आश्रय न लिया और बगड़ीके बाहर जैतसिंहजीकी छत्रियोंमें ठहरे। यहां पर रघुनाथजीसे फिर जोरकी चर्चा हुई और नाना प्रकारके उपाय करने पर भी स्वामीजी उनके सामिल न आये। रघुनाथजी भिखणजीको जब पुनः अपने साथ न ला सके तब उन्होंने स्वामीजीसे कहा कि मैं अब तुम्हारे पैर न जमने दूंगा। तू जहां जायगा वहां तेरा पीछा करूंगा और तुम्हारा घोर बिरोध होगा इन धमकियोंने. भीखनजी को जरा भी न डरा पाया और निर्भयताके साथ उन्होंने बगड़ीसे बिहार करना शुरू किया।

बिहार करते करते भीखणजी जोधपुर (जोधाणा) पहुंचे। यहां पहुंचते पहुंचते उनके अनुयायी तेरह साधु हो लिए थे। इनमें पांच रघुनाथजीकी सम्प्रदायके, छः जयमलजी की सम्प्रदायके तथा दो अन्य सम्प्रदायके थे। इन साधुओंमें टोकरजी, हरनाथजी, भारीमलजी वीरभान जी आदि सामिल थे। इस समय तक १३ श्रावक भी भीखणजीकी पक्षमें हो गये थे। जोधपुरके बाजारमें एक खाली दुकानमें श्रावकोंने सामयिक तथा पोषधादि किया। इसी समय जोधपुरके दिवान फतेहचन्दजी सींघीका बाज़ार होकर जाना हुआ। साधुवोंके निदिष्ट स्थानको छोड़ बाजारके चोहटेमें कुछ साधु श्रावकोंको सामयिक आदि धर्मकृत्य करते देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ। उनके पूछने पर श्रावकोंने रघुनाथजोसे भीखणजीके अलग होनेकी सारी बात कह सुनायी तथा जैनशास्त्रोंकी दृष्टिसे अपने निर्मित बनाये मकानोंमें रहना साधुके लिए अशास्त्रीय है यह भी समझाया। फतेहचन्दजीके पूछने पर यह भी बतलाया कि भीखणजीके मतानुयायी १३ ही साधु हैं। यह सब बातें सुन कर तथा १३ ही साधु और १३ ही श्रावकोंका आश्चर्यकारी संयोग देख कर वहां पर खड़े हुए एक सेवक कविने एक दोहा जोड़ सुनावा और इन्हें तेरापंथी नामसे संबोधन किया।

स्वामीजीकी प्रत्युत्पन्न मति बहुत ही आश्चर्यकारी थी, उनके जैसी

उत्पात बुद्धि थोड़ी ही होती है। उस सेवक कविके मुखसे आकस्मिक 'तेरापन्थी' नामकरण सुनकर स्वामीजीने उसका बहुत ही सुन्दर अर्थ लगाया। उन्होंने कहा कि जिस पथमें पांच महाव्रत, पांच सुमति और तीन गुप्ति हैं, वही तेरापन्थ अथवा जो पन्थ, हे प्रभु तेरा है, वही तेरापन्थ है।

इस घटनाके बाद सम्बत् १८१७ आषाढ़ सुदी १५ के दिन स्वामी भीखणजीने भगवान्‌को साक्षी कर पुनः नवीन दीक्षा ग्रहण की और उनके साथमें जो अन्य साधु निकलेथे, दूसरी जगह चातुर्मासके पहिले उन्हें भी ऐसी ही करने कह दिया था। चातुर्मास समाप्त होने पर फिर सभी साधु एकत्रित हुए और जिनकी श्रद्धा और आचार आपसमें मिली वे सामिल रहे बाकीके अलग कर दिये गये। इस प्रकार तेरापन्थी मतकी स्थापना हुई और बादमें वह क्रमशः वृद्धि होता गया।

इस प्रकार मतकी स्थापना तो हो गयी परन्तु आगेका मार्ग सरल न था। रघुनाथजीने बड़े जोरों से लोगोंको भड़काना शुरू किया। रहनेके लिये स्थान तक न मिलता था। घी दूधकी तो बात दूर रही रूखा सूखा आहार भी पूरा न मिलता था। पीनेके पानीके लिए भी कष्ट उठाना पड़ता पर स्वामीजी इन विघ्न बाधाओंसे घबराकर मार्ग-च्युत न हुए। उन्होंने तो यह सब सोच विचार करके ही अपना मार्ग निश्चित किया था और उसके लिए वे अपने प्राणोंको होड़ भी लगा चुके थे। स्वामी जीतमलजीने ठीक ही कहा है 'मरण धार शुद्ध मग लियो।' अर्थात् उन्होंने प्राण देने तकका निश्चय करके ही प्रभुके सच्चे मार्गको अङ्गीकार किया था। इस प्रकारकी कठिनाइयां एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, परन्तु लगातार कई वर्षों तक सहनी पड़ी थी, पर स्वामीजीने उनके सामने कभी मस्तक नहीं काया।

इस प्रकार कठिनाइयोंसे लड़ते-लड़ते तथा दुःसह परिषहोंको समभाव पूर्वक सहन करते-करते उन्होंने देखा कि लोग सच्चे जैन धर्मसे कोसों दूर है, अधिकांश लोग गतानुगतिक है और सत्यासत्यका निर्णयमें अस-

मर्थ है तथा ज्ञाणावरणीय कर्मके प्रावल्यके कारण उन्हें समझाना बहुत कठिन है, धर्मके द्वेषी अधिक हैं तथा समझदारोंका अभाव-सा है। ऐसी परिस्थितिमें धर्म-प्रचार करनेका उद्योग असफल ही रहेगा। इसलिये इस उद्योगमें व्यर्थ शक्ति व्यय न कर मुझे अपने ही आत्म-कल्याण का विशेष उद्योग करना चाहिये। घर छोड़ कर इस कठिन मार्गमें साधु साध्वियोंका प्रव्रजित होना मुश्किल है इसलिये उग्र तपस्या कर मुझे अपना आत्मोद्धार करना चाहिये। इस प्रकार विचार कर उन्होंने एकान्तर व्रत करना शुरू कर दिया तथा धूपमें आतापना लेनी शुरू की। अन्य साधुओंने भी भिखणजीका साथ दिया। इस प्रकार स्वामीजीने अपने मत रूपी वृक्षको अपने तप रूपी जलसे सींचना शुरू किया। भिखणजीके समयमें थिरपालजी तथा फतेहचन्दजी नामक दो साधु थे, वे तपस्वी, सरल तथा भद्र प्रकृतिके थे। उन्होंने भिखणजीको इस प्रकार उग्र तप करते देख कर समझाया कि तपस्या द्वारा अपने शरीरका अन्त न करें आपके हाथों लोगोंका बहुत कल्याण होना सम्भव है। आपकी बुद्धि असाधारण है। अपने कल्याणके साथ-साथ दूसरोंके कल्याण करनेका सामर्थ्य भी आपमें हैं, आप अपनी बुद्धि और शक्तिका प्रयोग करें आपसे बहुत लोगोंके समझाए जानेकी आशा है। इन वयोवृद्ध साधुओंकी परामर्शको भिखणजीने स्वीकार किया और तभीसे अपने धार्मिक सिद्धान्तोंका लोगोंमें प्रचार करनेका विशेष उद्योग करने लगे। उन्होंने सिद्धान्तोंको ढालोंमें लिख-लिख कर शास्त्रीय उदाहरणोंसे उनका पोषण किया। न्याय तथा तार्किक दृष्टिसे उन्होंने दान दया पर सुन्दर ढालें रचीं, व्रत अव्रतको खूब समझाया। नव तत्वों पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी, श्रावकके व्रतों पर नया प्रकाश डाला। शील (ब्रह्मचर्य्य) के विषय पर महत्व पूर्ण रचना की। इस प्रकार क्रमशः उनके विचार जनताके हृदय पर असर करते गये। साध्वाचार पर ढालें रच कर शिथिलाचारको हटानेका प्रचार किया और सच्चा साधुत्व क्या है इसका अपने चरित्रसे लोगोंके सामने उदाहरण रखा। इस प्रकार उन्होंने

अपने मनकी सारी विचार धाराको शास्त्रीय मतसे एकी करणकर दिखाया और अपने मतकी जड़को पुष्ट कर दिया। जो मत केवल १३ साधु और श्रावकों को लेकर शुरू हुआ था वह आज फैलता-फलता दो लाखकी संख्या तक पहुंच गया है। आज राजपुताना, बंगाल, आसाम, पंजाब, मालवा, खानदेश, गुजरात और बम्बई प्रभृति सभी स्थानोंमें इस मतके अनुयायी हैं

भीखणजीके धर्म प्रचारके क्षेत्र मारवाड़, मेवाड़ ढूंढाड़, तथा कच्छ आदि प्रदेश ही रहे कच्छ प्रदेशमें स्वयं स्वामीजीका बिहार न हुआ था परन्तु वहां उनके मतका प्रचार श्रावक टिकम डोसीके द्वारा हुआ था। भीखणजीने अपने जीवन-कालमें ४८ साधु तथा ५६ साध्वियोंको प्रवर्जित किया था जिनमेंसे २० साधु तथा १७ साध्वियाँ साधु मार्गके कठोरता-सहनमें असमर्थ हो गण बाहर हो गयी थीं। श्रावक तथा श्राविकाओंकी संख्या भी बहुत बढ़ गई थी। इस प्रकार स्वामीजी अपने मत प्रचारकी सफलता अपने जीवन कालमें ही देख सके थे। स्वामीजीका देहावसान भादवा सुदी १३, संम्वत् १८६० को हुआ था। उन्हें अन्त समय तक जागरुकता रही। अपने अन्तिम दिनोंमें उन्होंने गण समुदायके हितके लिये जो उपदेश दिया वह स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है।

द्वितीय आचार्य्य—

स्वामीजीके बाद द्वितीय आचार्य्य श्रद्धेय श्री श्री १००८ श्री श्री भारीमालजी स्वामी हुए। आपका जन्म मेवाड़के मूहो ग्राममें संम्वत् १८०३ में हुआ था आपकी दीक्षा मारवाड़के केलवा ग्राममें हुई थी। स्वामी भीखणजीने अपने जीवन कालमें ही इन्हें युवराजपदवीसे विभूषित कर दिया था। इनके पिताका नाम कृष्णाजी लोढ़ा और माताका नाम धारिणी था। इनके शासन कालमें ३८ साधु और ४४ साध्वियांकी प्रवज्र्जा हुई। आप बड़े ही प्रतापी आचार्य्य हुए। खुद स्वामी भीखणजीने अन्त समयमें इनकी प्रशंसा की थी और सर्व साधुओंको उनकी आज्ञामें रहनेका आदेश किया था। उन्होंने कहा था कि ऋषि भारीमालजी सच्चे साधु हैं,

आचार्य पदकी जिम्मेवारी उठाने लायक भारीमालजीसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं। मैं सर्व साधुओंको आदेश करता हूं कि वे भारीमालजीकी आज्ञामें वर्तें। इनकी दीक्षा १० दस वर्षकी अवस्थामें ही हो गयी थी, वे बाल ब्रह्मचारी थे। आपका देहान्त ७५ वर्षकी अवस्थामें मेवाड़के राजनगरमें मिती माघ वदी ८ संम्वत् १८७८ हुआ था।

तृतीय आचार्य्य

तृतीय आचार्य श्री श्री १००८ श्री श्री रायचन्दजी स्वामीका जन्म बड़ी रावलियां ग्राममें संम्वत् १८४७ में हुआ था। और राजनगरमें उनको पाटगद्दी मिली थी। उनके पिताका नाम चतुरजी बम्ब था। ये ओसवाल जातिके थे। उनकी माताका नाम कुसलांजी था। ये भीखणजीके शासन कालहीमें नाबालक अवस्थामें तीव्र बैराग्यसे दीक्षित हो गये थे। स्वामी भीखणजीके देहावसानके समय इनकी उम्र छोटी ही थी। इन्होंने अपने शासनकालमें ७७ साधु और १६८ साध्वियांको दीक्षित किया था। इनका देहान्त ६२ वर्षको उमरमें माघ वदी १४ संम्वत् १६०८ को रावलियाँमें हुआ। आपने स्वामीजी श्री जितमल्लजीको भावी आचार्य्यके पदके लिये मनोनीत किया था।

चतुर्थ आचार्य्य प्रख्यात जीतमल्लजी स्वामी

चतुर्थ आचार्य श्री श्री १००८ श्री श्री जीतमलजी स्वामीका जन्म सं० १८६० में आसोज सुदी १४ को मारवाड़के रोहित ग्राममें हुआ था। उनके पिताका नाम आइदानजी गोलेछा और माताका नाम कलुजी था। इनकी दीक्षा नव वर्षकी उम्रमें जयपुरमें हुई थी। भीखणजीको छोड़ कर अन्य सब आचार्योंकी तरह ये भी बाल ब्रह्मचारी थे और बाल्यावस्थामें ही तीव्र वैराग्यसे अपनी माता तथा दो भाईके साथ दीक्षा ली थी। जीतमलजी महाराज असाधारण विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि थे। केवल ग्यारह वर्ष-की अवस्थासे ही उन्होंने कविताएं रचना करनी शुरू कर दी थी। उनकी कविताओंकी संख्या तीन लाख गाथाओंके लगभग है। इनका शास्त्रीय

ज्ञान अगाध और आश्चर्यकारी था। ऐसा कोई भी आध्यात्मिक विषय न था जिस पर वे लिख न गये हैं। स्वतंत्र रचनाओंके अतिरिक्त उन्होंने जैन सूत्रोंका पद्यानुवाद भी किया था। उनके अनुवादमें भाषाकी सरलता, अर्थकी स्पष्टता, मूल भावोंकी रक्षा तथा व्यक्त करनेकी सरलतासे आश्चर्यकारी पांडित्य झलक रहा है। भगवती सूत्र जैसे विशाल तथा सूक्ष्म रहस्यपूर्ण ग्रन्थका अनुवाद करना कम विद्वत्ताका काम नहीं हो सकता। इसी प्रकार उत्तराध्ययन, दशवैकालिक सूत्र आदि शास्त्रोंका भी उत्तमता पूर्वक अनुवाद किया है। ये अनुवाद उनकी असाधारण विद्वत्ताकी चिरस्थायी कीर्तियां हैं। इन अनुवादोंके अतिरिक्त उनकी मूल रचनाएँ भी कम नहीं हैं। 'भ्रम विध्वंसनम्', 'जिन आज्ञा मुख मण्डनम्', 'प्रश्नोत्तर तत्त्ववोध', आदि ग्रन्थ तात्त्विक विषयोंकी बड़ी उत्तम पुस्तकें हैं। एक एक विषयके सारे शास्त्रीय विचार और प्रमाणको एक जगह एकत्रित करनेमें उन्होंने जो अथाह परिश्रम किया है वह किसी भी निष्पक्ष विद्वानकी प्रशंसा प्राप्त किये बिना नहीं रह सकता। इनकी फुटकर रचानाएँ भी कम नहीं हैं। जीवन चरित्र लिखनेमें तो आप और भी अधिक सिद्धहस्त थे। 'भिक्षुयश रसायन' तथा 'हेम नव रसो' नामक जीवन चरित्रमे आपने अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है। यद्यपि ये पुस्तकें मारवाड़ी भाषामें है फिर भी यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि हिन्दी साहित्यमें ही नहीं पर दूसरी भाषाओंके साहित्यमें भी ऐसे कलापूर्ण जीवन चरित्र कम ही मिलेंगे। श्री जयाचार्यने धर्मका अच्छा प्रचार किया था। उनके शासन कालमें १०५ साधू और २२४ साध्वियां दीक्षित हुई थीं। आपका देहावसान ७८ वर्षकी अवस्थामें भाद्र बदी १२ सं० १९३८ को जयपुरमें हुआ। आपने सर्वथा योग्य समझ स्वामीजो श्री मघराजजीको पाटवी चुन लिया था।

पंचम आचार्य—

पांचवें आचार्य श्री श्री १००८ श्री श्री मघराजजी स्वामीका जन्म बीकानेर रियासतके विदासर गांवमें चैत सुदी ११ सं० १८९७ को हुआ

था। उनकी दीक्षा भी बाल्य-कालमें ही लाडनूमें हुई थी। जयपुरमें वे आचार्य पद पर आसीन हुए थे। उनके पिताका नाम पूरणमलजी बेगवाणी और माताका नाम वन्नांजी था। उनका देहान्त ५३ वर्षकी अवस्थामें चैत वदी ५ सं० १६४६ में सरदारशहरमें हुआ। उन्होंने ३६ साधू और ८३ साध्वियोंको प्रवर्जित किया। आपने अपने पट्टलायक स्वामीजी श्रीमाणकलालजीको निर्वाचित किया था।

षष्ठ आचार्य्य—

छट्ठे आचार्य श्री श्री १००८ श्री श्री मानिकलालजी स्वामीका जन्म जयपुरमें सं० १६१२ की भादवा बदी ४ को हुआ था। उनकी दीक्षा लाडनु में छोटी उम्रमें ही हुई थी और वे सरदारशहरमें आचार्य बनाये गये थे। उनकी माताका नाम छोटांजी और पिताका नाम हुकमचन्दजी थरड़ श्रीमाल था। उन्होंने केवल १६ साधू और २४ साध्वियोंको ही दिक्षा दी थी। उनका देहावसान ४२ वर्षकी अपेक्षाकृत कम अवस्थामें ही हो गया था। उनका देहावसान सं० १६५४ की कातिक बदी ३ को सुजानगढ़में हुआ था। आप कोई पाटवी नहीं चुन गये थे इसलिये प्रायः २॥ महीना तक आचार्य पद पर कोई भी न रहे! चोमासेके बाद सब साधु एकत्रित हो लाडनु में स्वामीजी डालचन्दजीको आचार्य पदवी दी।

सप्तम आचार्य्य—

सातवें आचार्य श्री श्री १००८ श्री श्री डालचन्दजी स्वामीका जन्म उज्जैन (मालवा) में मिती अषाढ़ सुदी ४ सं० १६०६ को हुआ था। इनकी दीक्षा भी बाल्यावस्थामें इन्दौरमें हुई थी तथा लाडनूमें वे आचार्य पद पर अवस्थित हुए थे। उनके पिताका नाम कानीरामजी पींपाड़ा और माताका नाम जड़ावांजी था। इनका देहावसान ५७ वर्षकी अवस्थामें सं० १६६६ के भाद्र मासमें लाडनूमें हुआ। उन्होंने ३६ साधु और १२५ साध्वियां दीक्षित की।

वर्तमान आचार्य—

आठवें आचार्य, हमारे वर्तमान शासन नायक, श्री श्री १००८ श्रीश्री प्रातःस्मरणीय श्री कालुरामजी महाराजका जन्म मिती फाल्गुन शुक्ला २ सं० १९३३ को छापर (बीकानेर) में हुआ था। आपके पिताजी का नाम मूलचन्दजी कोठारी और माताका नाम छोगांजी है। आपकी दीक्षा सं० १९४४ मिती आसोज सुदी ३ को आपकी माताजी सती छोगांजीके साथही बिदासरमें हुई थी। दीक्षा संस्कार पांचवें आचार्य स्वामी मघराजजी महाराजके हाथसे हुआथा। पुज्यजी महाराज स्वामी डालचन्दजीके देहावसान के बाद आपको पाट गद्दी मिली। आपको सं० १९६६ मिती भादवा सुदी १५ को आचार्य पद मिला था। आपकी माता सती छोगांजी अब भी विद्यमान हैं। इनकी अवस्था लगभग ९० साल की हो चुकी है। नाना प्रकारके कठिन तप और व्रतोंको करते रहनेसे इनका शरीर क्षीण हो गया है। देह दुर्बलता और आंखोंकी ज्योति चले जानेसे आपको विदासर (बीकानेर) में स्थानाथर्प कर दिया गया है। वर्त्तमान् आचार्य महाराज के शासन कालमें धर्मका बहुत प्रचार हुआ है। ई० सन् १९३३ तक आप १४३ साधु और २२३, साध्वियां दीक्षित कर चुके थे। श्रावक तथा श्राविकाओं की संख्या भी काफी बढ़ी है। थली; ढुंढ़ाड, मारवाड़, मेवाड़, मालवा, पंजाब, हरियाना, आदि देशों के अतिरिक्त बम्बई, गुजरात दक्षिण आदि दूर दूर प्रांतों में आप साधुओंके चौमासे करवा रहे हैं जिससे धर्मका क्रमशः प्रचार हो रहा है। अभी गण समुदायमें १४१ साधु और ३३३ साध्वियां हैं। वर्तमान आचार्य्य श्रीकालूरामजी का शास्त्रीय अध्ययन बड़ा ही गम्भीर है। वे संस्कृतके अगाध पण्डित हैं। अपने सम्प्रदाय के साधु और साध्वियोंमें आप संस्कृत भाषाका विशेष रूपसे अध्ययन अध्यापना करा रहे हैं। आपका असाधारण शास्त्र ज्ञान, प्रभावोत्पादक धर्म उपदेश, गम्भीर मुख-मुद्रा, पवित्र ब्रह्मचर्यका तेज और व्यक्तित्वकी असाधारणता, हृदय पर जादूका सा असर डालती है। उनके

संसर्गमें जो आते हैं उनकी भक्ति उनके प्रति सहज ही हो जाती है। जैन शास्त्रोंके रहस्य और सच्चे अर्थको बतलानेमें आपने भारतके दार्शनिकों को ही नहीं पाश्चात्य देशके विद्वानोंकी भी प्रशंसा प्राप्त की है।

जैन साहित्यके संसार प्रसिद्ध विद्वान् जर्मन देशवासी डा० हरमन चिकागो (अमरिका) युनिवर्सिटीके धर्मके अध्यापक जैकोबी जो कि कई वर्ष तक कलकत्ता विश्वविद्यालयमें जैन दर्शनके अध्यापक थे, आपके दर्शन किये थे और शास्त्रोंके कई रहस्योंको समझा था। चिकागो (अमरिका) युनिवर्सिटीके धर्मके अध्यापक डा० चार्ल्स डब्लू गिलकी भी आपके दर्शन कर प्रभावित हुये थे। अपने भाषणमें उन्होंने तेरापन्थी धर्मके सिद्धान्त और साध्वाचार सम्बन्धी नियमोंको भारत, यूरोप और अमेरिकाके अपने मित्रोंके सामने रखनेका विचार प्रकट किया था।

तेरापन्थियोंके सैद्धान्तिक मतवाद

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थीमतके अनुयायी मूर्तिपूजा नहीं करते और न मूर्ति पूजा करना मोक्षका साधन ही मानते हैं। वे तीर्थङ्करोंकी भाव पूजा या ध्यान करते हैं। जिन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, या जिन्होंने संसार त्याग कर साधु-मार्ग स्वीकार किया है, एवं साध्वाचार-का यथा रीति पालन करते हैं वे ही तेरापन्थियोंके बन्दनीय और नमस्य हैं। इस प्रकार मूर्ति पूजा न कर केवल गुण-पूजा करना ही तेरापन्थियोंके सिद्धान्तकी विशेषता है।

तेरापन्थी साधु लौकिक और पारलौकिक उपकारमें रात दिनका अन्तर समझते हैं। लौकिक उपकारकी ओर किंचित भी ध्यान न देकर आत्मिक उत्थान द्वारा नैतिक उन्नति और पारलौकिक कल्याण सिद्ध करनेका रास्ता दिखलाते हैं। सांसारिक कार्योंके साथ वे कोई संसर्ग नहीं रखते और न उस सम्बन्धमें कोई उपदेश ही करते हैं। उनके सारे उपदेश धार्मिक होते हैं और केवल धर्म प्रचारके लिये ही उनका जीवन उत्सर्ग रहता है।

दीक्षा लेनेके बादसे देहावसान तक तेरापंथी साधुओंको निम्नलिखित शास्त्रोक्त व्रत और नियमोंका पालन करना पड़ता है।

(क) साधुओंको पांच महाव्रत का पालन करना पड़ता है।

(१) प्राणातिपात विरमण व्रतः—इस व्रतके अनुसार साधुको सम्पूर्ण अहिंसक बनना पड़ता है। साधु बननेके साथ ही उन्हें यह प्रतिज्ञा या व्रत लेना पड़ता हैं कि मैं जीवन पर्यन्त सूक्ष्म या बादर, त्रस या स्थावर किसी प्रकारके प्राणीकी हिंसा मन, बचन या कायसे नहीं करूंगा, न कराऊंगा और न करने वालेका अनुमोदन ही करूंगा। और वे केवल प्रतिज्ञा करके ही नहीं रह जाते परन्तु अपने जीवनको इस प्रकार संचालन करते हैं कि जिससे वे इस नियम व व्रतको सम्पूर्ण रूपसे पालन कर सकें। गर्मीसे गर्मीमें भी वे पंखेसे हवा नहीं लेते; ठण्डसे ठण्ड पड़ने पर भी तपनेके लिये आगीका सहारा नहीं लेते, भूखसे प्राण निकलते हों तब भी सचित्त वस्तु नहीं खाते। फूलको नहीं तोड़ते, घास पर नहीं चलते, सचित्त पानी का स्पर्श नहीं करते, इस प्रकार अपने जीवनको हर प्रकारसे संयमी और अहिंसक बनानेके लिए असाधारण त्याग करते हैं। जैन साधु, सच्चे जैन-साधु, अहिंसाको सम्पूर्ण रूपसे पालन करनेके लिए हर प्रकारका त्याग करते हैं यहाँ तक कि अपने प्राणोंको भी उसकी साधनामें नियोजित कर देते हैं। यही कारण है कि संसारमें रहते हुए भी वे सम्पूर्ण अहिंसाका पालन कर सकते हैं। नीचे जैन साध्वाचारके कुछ ऐसे नियम दिये जाते हैं जिनसे पाठक समझ सकेंगे कि जैन साधु हिंसासे, सूक्ष्मसे सूक्ष्म हिंसासे बचनेका किस प्रकार प्रयत्न करते हैं:—

(१) हिंसासे बचनेके लिए जैन साधु खुद भोजन नहीं बनाते, न उनके लिए बनाये हुए, खरीदे हुए, देनेके लिए लाए हुए भोजनको लेते हैं। भिक्षामें अचित, प्राशुक और निर्दोष आहार पानीका संयोग मिलता है तो उसे ग्रहण करते हैं अन्यथा बिना आहार पानीके ही सन्तोष करते हैं। कोई उनके लिए भोजनादि न बना लें इसके लिए वे पहलेसे कहते भी नहीं कि वे किसके यहाँ गोचरी (भिक्षार्थ गमन) करेंगे।

(२) जैन साधु माधुकरी वृत्तिसे भिक्षा करते हैं अर्थात् बिना किसी एकके ऊपर भार स्वरूप बने वे थोड़ा थोड़ा अनेक घरोंसे भिक्षा ग्रहण करते हैं।

(३) कोई भिखारी या अन्य याचक किसी घर पर भिक्षा मांग रहा हो तो साधू भिक्षा मांगनेके लिए वहाँ नहीं जाते। क्योंकि ऐसा करनेसे दूसरेके अन्तराय पहुंचे।

(४) हरी दूब, घास, राखसे ढकी हुई आगी, जल आदि पर से होकर साधु विहार नहीं करते।

(५) यदि कोई दुष्ट साधुको मारनेके लिए आवे तो साधु प्रत्याक्रमण नहीं करते बल्कि समभाव पूर्वक उसे समझाते हैं और उसके न समझनेसे समभावसे आक्रमणको सहन करते हैं। और विचार करते हैं कि मेरी आत्माका कोई नाश नहीं कर सकता।

(६) साधु खान पान, स्वच्छता तथा मल-विसर्जनके ऐसे नियमोंका पालन करते हैं कि जिससे उनके निमित्तिसे जीव जन्तुओंकी उत्पत्ति या विनाश न हो।

(७) किसीके कठोर बचनोंको सुनकर जैन साधु चुपचाप उसकी उपेक्षा करते हैं और मनमें किसी प्रकारका विचार नहीं लाते, मारे जाने पर भी मनमें द्वेष लाना जैन साधुके लिए मना है। ऐसे अवसर पर पूर्ण सहनशीलता रखना ही साधुका आचार है।

इस प्रकार जैन धर्मके सभी नियमोंमें अहिंसाको स्थान दिया गया है और सच्चे जैन साधु सम्यक प्रकारसे उसका पालन करते हैं। तेरापंथी साधु इन नियमोंको यथारूप पालते हैं। दूसरों के भांति शिथिलाचारी बनकर व्रत भङ्ग नहीं करते।

(२) मृषावाद विरमण व्रतः—इस व्रतके अनुसार साधु प्रतिज्ञा करते हैं कि वह किसी प्रकारका असत्य भाषण नहीं करेंगे। उनकी प्रतिज्ञा होती है कि मैं मन वचन या कायासे न झूठ बोलूंगा, न बुलाऊँगा, न जो

बोलेगा उसका अनुमोदन करूँगा। इस प्रकार असत्य भाषणका त्याग कर लेने और सम्पूर्ण सत्य व्रतको अङ्गीकार कर लेने पर भी साधुको बोलते समय बहुत सावधानी और उपयोगसे काम लेना पड़ता है। सत्य होने पर भी साधु सावद्य पापयुक्त कठोर भाषा नहीं बोल सकते। उन्हें सदा असंदिग्ध, अमिश्रित और मृदु भाषा बोलना पड़ता है। जिस सत्य भाषणसे किसीको कष्ट हो या किसी पर विपत्ति आ पड़े वैसा सत्य बोलना भी साधुके लिए मना है। इसलिये कोई भी तेरा पंथी साधु किसीके पक्ष या विरुद्ध साक्षी नहीं दे सकते और न साधु किसी भी हालतमें मिथ्याका आश्रय ही ले सकते हैं। जहां सत्यवाद साधुके लिये अयुक्तिकर हो वहां वे मौन अवलम्बन करते हैं।

(३) अदत्तादान विरमण व्रतः—इस व्रतके अनुसार बिना दिये एक तृण भी लेना साधुके लिए महापाप है। साधुको प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि गाँवमें हो या जङ्गलमें, छोटी हो या बड़ी, कोई भी बिना दी हुई वस्तु वह न लेगा, न दूसरेसे लिरायगा, न लेते हुओंका अनुमोदन करेगा। इस व्रतके ही कारण जैन साधु बिना माता पिता स्वामी या स्त्री या अन्य सम्बधियों की आज्ञाके, दीक्षाके लिए तैयार होने पर भी, किसी व्यक्तिको दीक्षा नहीं देते। यह व्रत भी अन्य व्रतोंकी तरह मन वचन और कायासे ग्रहण करना पड़ता है।

(४) मैथुन विरमण व्रतः—इस व्रतके अनुसार साधुको पूर्ण ब्रह्मचर्य रखना होता है। साधुको मन वचन और कायासे पूर्ण ब्रह्मचर्य पालनकी प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है। वह देव, मनुष्य या तिर्यञ्च कोई सम्बन्धी मैथुन नहीं कर सकता, न करा सकता और न मैथुन संभोग वालाका अनुमोदना कर सकता है। स्त्री मात्रको स्पर्श करना साधुके लिए और पुरुष मात्रका स्पर्श करना साध्वियोंके लिए पाप है। जिस मकानमें साध्वियां या अन्य स्त्रियां रहती हों वहां साधु रात्रि वास नहीं कर सकते और न एकक स्त्रीके पास दिनमें ही वे ठहर सकते हैं।

(५) अपरिग्रह व्रत:—इस व्रतके अनुसार साधुओंको सब प्रकारके धनधान्यादि परिग्रह का त्यागी होना पड़ता है। वे किसी प्रकार की जायदाद नहीं रख सकते, न धन जेवर, दास दासी आदि ही रख सकते हैं। अपरिग्रह व्रतका मन वचन और कायासे पालन करना पड़ता है और जिस प्रकार वे स्वयं परिग्रह नहीं रख सकते उसी प्रकार दूसरों से भी परिग्रह नहीं रखवा सकते और न जो दूसरे रखते हैं उनका अनुमोदन कर सकते है।

उपरोक्त पाँच व्रतोंके अतिरिक्त एक छट्ठा रात्रिभोजनत्याग व्रत भी साधुओंको पालन करना पड़ता है। इस व्रतके अनुसार साधु किसी प्रकारका आहार पाणी रात्रिमें—सूर्यास्तसे सूर्योदय तक—नहीं करते। मन वचन और कायासे उन्हें इस व्रतका पालन करना पड़ता है। जिस प्रकार साधु स्वयं सूर्यास्तके बाद किसी प्रकारका आहार नहीं करते उसी प्रकार न दूसरोंसे आहार करवाते हैं और न करने वालेका अनुमोदन करते हैं। यह छट्ठा व्रत अहिंसाव्रतकाही अंग है।

(ख) उपरोक्त छः व्रतोंके अतिरिक्त साधुको निम्नलिखित पांच समितियोंको पालन करना पड़ता है :—

(१) इर्या:—इस समितिके अनुसार मार्गमें चलते समय साधुको उपयोग पूर्वक आगेका मार्ग देख कर चलना पड़ता है। साधु रातमें मल-मूत्रके त्यागको छोड़ दूसरे कार्यके लिये अछायामें नहीं जा सकते। ढके हुए स्थानमें भी विशेष, यत्न पूर्वक जयनाके साथ चलना पढ़ता है। उन्मार्गको छोड़कर सीधे सरल मार्ग पर ही चल सकते हैं। गमनागमन करते समय बहुत उपयोग और संभालपूर्वक गमन करना पड़ता है। जिससे कि सूक्ष्मसे सूक्ष्म प्राणीको भी इजा (कष्ट) न पहुंचे।

(२) भाषा—विचारपूर्वक सत्य, सरल, निर्दोष और उपगोगी वचन बोलना, अपने वचनोंसे किसीको कष्ट न पहुंचाना। इस समितिका उद्देश्य

है जिस वचनसे अविश्वास उत्पन्न हो, दूसरा शीघ्र कुपित हो, दूसरेका अहित हो वैसी भाषा बोलना साधुके लिए सर्वथा वर्जनीय है।

(३) एषणा—इस समितिके अनुसार साधुको आहार पानी, वस्त्र, पात्रादि उपकरण तथा पाट बाजोटादि वस्तुएँ लेनेके पूर्व सावधानीसे काम लेना होता है। उनकी भिक्षा करने, उनसे स्वीकार करने तथा उसको उपभोगमें लानेमें संयमको किसी प्रकारसे आघात न पहुंचे इस प्रकार उपयोग या सावधानी रखना पड़ता है। निर्दोष तथा परिमित भिक्षा, अल्प कल्पानुसार उपकरण आदि ग्रहण करना इस समितिके भीतर आ जाता है। किसी वस्तुको ग्रहण करनेके पूर्व साधुको इस बातकी पूरी खोज कर लेना पड़ता है कि कहीं साधुको उद्देश करके ही तो वह वस्तु नहीं खरीदी, लायी यां बनायी गयी है।

(४) आदान भंड निक्षेपण—वस्त्र पात्रादि उपकरणोंको उपयोग पूर्वक उठाना और रखना जिससे कि किसी जीवको कोई इजा (कष्ट) न पहुंचे। चीजको अच्छी तरहसे देख पूंछ कर ही रखना उठना साधुके लिए कर्तव्य है।

(५) उच्चारादि प्रतिष्ठापन—मल, मूत्र, श्लेष्म या अन्य परिहार्य वस्तुको, किसी जीवको दुःख न पहुंचे ऐसे स्थानमें उपयोग पूर्वक विसर्जन करना इस समितिका उद्देश्य है। जैन साधू मल, मूत्र श्लेष्मादि जीव-उत्पन्न करने वाली त्याज्य वस्तु तथा गंदगी, रोगादि फैलाने वाली परिहार्य चीजोंको जहां तहां नहीं फेंक सकते। अपथ्य आहार, न पहरे जाने योग्य फटे कपड़े तथा अन्य विस- र्जनयोग्य चीजोंको जीव रहित एकान्त स्थानमें उत्सर्ग करते हैं।

(ग) तीन गुप्ति मन, वचन तथा काया गुप्तिके सम्यक् पालनमें साधुको सदा सर्वदा सचेष्ट रहना पड़ता है।

(१) मन—मनके दुष्ट व्यापारोंको रोकना सरंभ, समारंभ तथा आरम्भसे मनको रोककर शुद्ध क्रियामें प्रवृत्त करना।

(२) वचन—वाणीके अशुभ व्यापारको रोकना अर्थात् वाणीका संयम करना।

(३) कायाको—बुरे कार्योंसे रोकना अर्थात् देहको संयममें रखना।

समितियाँ साधु जीवनकी प्रवृत्तियाँको निष्पाप बनाती हैं अर्थात् आवश्यक क्रियाएँ करते हुए भी साधु समितियोंके पालनके कारण पापके भागी नहीं बनते तथा गुप्तियां अशुभ व्यापारसे निवृत होनेमें सहायता करती हैं। इस प्रकार साधुका जीवन सर्म्पूर्ण संयमी होता है। वे इतने व्यवहार कुशल होते हैं कि संयमी जीवनकी सारी क्रियाओंको करते हुए भी अपनी सावधानी या उपयोगके कारण पाप कर्मका उपार्ज्जन नहीं करते।

जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी साधु उक्त नियमोंको संपूर्णतया पालते हैं और इनके पालनेके विषयमें जो सब कठोर नियमादि समय समय पर अनुभवी बहुदर्शी आचार्योंने बनाये हैं उन पर पूर्ण ध्यान रखते हुए वे अपना संयम जीवितव्य निर्वाह करते हैं।

जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी मत कोई नया सम्प्रदाय नहीं है। परन्तु वह आदि अथवा मूल जैनधर्म ही है जैनधर्मका। जो आदि स्वरूप था वह हजारों वर्षोंके पड़ोसी धर्मोंके संसर्ग या प्रभावके कारण इतना बदल गया कि आज जब उसका असली स्वरूप सामने लाया जाता है तो लोग उसे अनोखा धर्म समझ कर उसका मनमाना अनुचित विरोध करने लगते हैं। परन्तु यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जैनधर्ममें समय तथा वातावरणके प्रभावसे जो विकार आया लोग धीरे-धीरे उससे इतने परिचित एवं अभ्यासी हो गये कि आज उनके लिए जैनधर्मके असली और विकृत रूपमें भेद करना भी मुश्किल हो गया। जब धर्म अपने उच्च स्थानसे गिरना शुरू हुआ और अन्य पड़ोसी धर्मोंने जोर पकड़ा तो कुछ जैन लेखक या व्याख्याकारोंने जैन सूत्रोंके पाठोंका अर्थ बदलना शुरू किया और उनका ऐसा अर्थ दुनियाके सामने रखा जो कि जैनधर्मसे खिलाफ

और अन्य धर्मोंके सिद्धान्तोंसे मिलता जुलता था। इस प्रकार सैकड़ों वर्षोंके परिवर्त्तनसे आते आते इतना विकार आया कि जैनधर्मके असली स्वरूप और बादके स्वरूपमें कोसोंका अन्तर पड़ गया। अनेक महामना धर्मधुरन्धरोंने जैनधर्मके सत्य स्वरूपके खोजमें अपना हाथ लगाया और आंशिक सफलता भी प्राप्त की। संत भीखणजी भी इन्हीं महान पुरुषोंमेंसे एक थे। वे सबसे बादमें हुए परन्तु सबसे अधिक परिश्रम इन्हींने किया और पूर्ण सफलता भी इन्हींको मिली। इनका मत कोई नया धर्म नहीं है बल्कि शास्त्रोक्त जैनधर्मसे पर्ण समन्वय या एक रूपता रखता है। इस प्रकार जैनधर्मके सनातन स्वरूपसे उसका पार्थक्य न होते हुए भी जैनधर्मके जो अन्य सम्प्रदाय हैं और जिनका अस्तित्व इससे प्राचीन है उनके साथ कई खास बातोंमें इसका मतभेद हो जाता है। हम थोड़ेमें इन मतभेदोंका दिग्दर्शन करा देना उचित समझते हैं।

१—तीर्थंकर भगवान् केवल निरवद्य करणी की आज्ञा देते हैं, सावद्य करणी की आज्ञा नहीं देते। निरवद्य करणी से जीव को मोक्ष पद प्राप्त होता हैं परन्तु सावद्य करणी से नये कर्म का वंध होकर जीव की दुर्गति होती है। जो कर्म रोकने और काटने के कार्य हैं भगवान उन्हें करने की आज्ञा देते हैं, पर इसके अतिरिक्त दूसरे सारे कार्य सावद्य है पापास्रव के कारण हैं अतः प्रभु आज्ञा नहीं देते। तेरापंथी सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि निरवद्य कार्य याने भगवानका अनुमोदित कार्य कोई भी मतावलम्वी क्यों न करे वह आज्ञा में है। जैनके दूसरे सम्प्रदाय वाले जैनेतरकी शुद्ध करणीको भी आज्ञा वाहिर समझते हैं।*

---

*दोय करणी संसार में, सावद्य निरवद्य जाण।
निर्वद्य में जिण आगन्यां, तिण स्युं पामें पद निर्वाण ॥
सावद्य करणी संसार नी, तिण में जिन आगन्यां नहीं होय।
कर्म बंधै छे तेह थी, धर्म म जाण्यो कोय ॥

२—तेरापन्थी सम्प्रदायके अनुसार जहाँ तीर्थङ्कर भगवान्‌की आज्ञा है वहाँ धर्म और जहाँ प्रभु (वीतराग देव) की आज्ञा नहीं वहाँ अधर्म है।

जैसे कि आहारादिको समानधर्मी साधुओंमें वितरण कर खाना आज्ञामें है, अतः साधुके लिये धर्म है परन्तु किसी साधुको किसी दुष्टके आक्रमण करने पर उस साधु की पक्ष लेकर किसी भी साधुके लिये उस अत्याचारी को दंड देना, ताडना आदि बल प्रकाश करना आज्ञाके बाहिर है अर्थात् मना है। साधु एक दूसरे की व्यावच करे इसमें प्रभु-आज्ञा से धर्म है परन्तु एक साधुके लिये एक श्रावक की व्यावच करना करवाना व अनुमोदना, पाप मूलक है कारण यह प्रभुकी आज्ञाके सर्वथा खिलाफ है।**

(३) प्रभुने जहां मौन रखा है वहां पाप—केवल पाप ही है—धर्म और पाप मिले हुए नहीं हैं। जहां प्रभुने हाँ और ना दोनोंमें पाप समझा

कर्म रूके तिण करणी में आगन्यां, कर्म कटै तिण करणी में जाण रे।
यां दोयां करणी विना नवि आगन्यां, ते सगली सावद्य पिछाण रे ।।

** जे जे कारज जिन आज्ञा सहित छे, ते उपयोग सहित करे कोय।
ते कारज करतां घात होवें जीवांरी, तिणरो साधने पाप न होय रे ।।
नदी मांही वहती साध्वी ने, साधु राखें हाथ सम्भावै ।
तिण मांही पिण छै जिण जी री आज्ञा, तिणमें कुण पाप बतावैरे ।।
इर्या समिति चालतां साधु स्युं, कदा जीव तणी होवे घात।
ते जीव मुआं रो पाप साधु ने, लागे नहीं अंश मात रे ।।
जो इर्या समिति बिना साधु चाले, कदा जीव मरै नहीं कोय ।
तो पिण साधु ने हिन्सा छउँ कायरी लागें, कर्म तणो वंध होयरे ।।
जीव मुआ तिहाँ पाप न लाग्यो, न मुआ तिहाँ लागो पाप ।
जिण आज्ञा संभालो जिण आज्ञा जोवो, जिण आज्ञामें पाप म थापोरे ।।

वहीं उन्हें मौन धारण करना पड़ा है। उदाहरणस्वरूप कुंआ खुदानेमें लगे हुए किसी मनुष्यने भगवानको प्रश्न किया कि प्रभु ! कुआं खुदानेमें मुझे पाप होगा या पुण्य। प्रभुने इस प्रश्नका कोई प्रत्युत्तर न दिया बल्कि मौन धारण किया। यहां कुआँ खुदानेसे जीव हिंसा हो रही थी इसलिये यदि भगवान् यह कहते कि यह पुण्यका कार्य है तो झूठ बोलनेसे मोहनीय कर्म का बंध करते और यदि सत्य बोलते हुए यह कह देते कि इसमें पुण्य नहीं पाप है तो शायद कुआँ खोदना बन्द हो जानेसे जीवोंको पानी का लाभ न होता। इस प्रकार जीवोंके सुखमें अन्तराय पहुंचानेसे उन्हें अन्तराय कर्मका बंध होता। एक ओर मोहनीय कर्मका बंध और दूसरी ओर अन्तराय कर्मका बंध था इसलिये भगवानने प्रश्नका कोई उत्तर न दिया। जैनके कुछ सम्प्रदाय वाले मौनको सम्मतिका लक्षण ठहराते हैं परन्तु गहन विचार करनेसे ऐसी मान्यता भ्रान्त मालूम हो जायगी। नीतिविदोंने "मौनं सम्मति लक्षणम्" अवश्य बताया है। किन्तु "नीति" और धर्मके क्षेत्रमें बहुत अन्तर है। नीतिके मान्यताके अनुसार भी हम मौन भावको सदा सर्वदाके लिये सम्मतिका लक्षण प्रमाण नहीं कर सकते, और जैन-धर्मके अनुसार तो "मौन" का अर्थ सम्मति किसी प्रकारसे और किसी अंशमें नहीं हो सकता।

(४) व्रतमें धर्म, अव्रतमें अधर्म है। जैन धर्म, साधकोंके दो भेद करता है। एक अणुव्रतियोंका जो गृहस्थ-जीवनमें रह कर आत्म-कल्याण साधन करनेका प्रयास करते हैं और दूसरा महाव्रतियोंका जो सर्व व्रती साधु होते हैं। इन दोनों प्रकारके साधकोंका आदर्श तो समान ही रहता है परन्तु अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह इन आत्मकल्याण के साधनोंको दोनों समान रूपसे नहीं अपना सकते। श्रावक गृहस्थाश्रमी है अतः अपनी गार्हस्थिक आवश्यकताओंके कारण इन व्रतोंको आंशिक रूपमें ही स्वीकार कर सकता है अर्थात् वह मर्यादित धर्मका पालन करता है। परन्तु साधु सम्पूर्ण रूपसे इन व्रतोंको अङ्गीकार

करते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि गृहस्थ अपने लिये छूट—आगार रख लेता है परन्तु साधु कोई छूट—आगार नहीं रखते हैं। श्रावक आगार-धर्मी साधु अनागार-धर्मी होते हैं। श्रावक जितने अंशमें इन व्रतोंको अपनाता है उतने अंशमें वह धर्म पक्ष का सेवन करता है और जितनी छूटें रख लेता है उतने अंशमें अधर्म पक्षका। साधू सम्पूर्ण अंशमें इन व्रतोंको अपनाते हैं अतः वे केवल धर्म पक्षका ही सेवन करते हैं। जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी मतके अनुसार श्रावक जितना आगार रखता है उसके लिये उसे पाप ही होता है। उदाहरण स्वरूप यदि कोई श्रावक यह प्रतिज्ञा करे कि—"मैं अपनी मील ८ घण्टा ही चलाऊंगा अधिक नहीं" तो उसे ८ घण्टा मील चलानेका पाप तो अवश्य ही लगेगा एवं बाकीं १६ घण्टेके लिये, जब कि वह आसानीसे मील चला सकता था, त्याग करता है, वह धर्मका कारण है। इसी प्रकार यदि कोई मद्यपायी, साधु समागमके कारण, मद्यपानके दुखद परिणामोंको समझ, त्याग भावनासे, किन्तु अभ्यासके वशीभूत होनेके कारण सम्पूर्णतया मद्यपान त्याग करनेमें असमर्थ हो, यह प्रतिज्ञा करता है कि "मैं आजसे २ प्यालेसे अधिक मदिरा पानका त्याग करता हूं" तो क्या उसे इस प्रतिज्ञाके कारण २ प्याला मदिरा पानका दोष न लगेगा? उस मद्यपायीने २ प्यालेसे अधिक मद्यपानका त्याग किया यह उसका व्रत है, आज्ञामें है, सराहनीय है न की २ प्यालोंका छुट-आगार जो कि उसने अपनी कमजोरीके कारण रखा है। वह तो पाप ही है। त्यागका वास्तविक मर्म न समझने वाले इसे ठीक तौर पर नहीं समझते एवं आगरको भी धर्म मान बैठते हैं। इस प्रकार श्रावकका खाना पीना, चलना फिरना आदि सारी बातें अव्रतमें है अतः इन सबके कारण उसके निरन्तर कर्म बन्धते रहते हैं परन्तु साधु अनागारी होनेसे उन्हें किसी प्रकारके पाप नहीं लगते। जो न तो साधुकी तरह सर्व-व्रती है और न श्रावककी तरह अणुव्रती, वह सम्पूर्ण असंयती है, उसके लिये पापका रास्ता चारों तरफ खुला है। जो जितने अंशमें व्रतोंको अङ्गीकार करता है

वह उतने ही अंशोंमें पाप कर्मसे बचा रहता है—उसके नये कर्मोंका संचार नहीं होता। जो जितनी अधिक छूटें रखता है—अपनी इच्छाओंको जितना कम संयममें रखता—वह उतना ही अधिक पापोपार्जन करता है। कुछ जैननामधारी कहते हैं कि श्रावककी छूटोंके लिये भी उसे धर्म ही होता है क्योंकि गार्हस्थिक जीवनके निर्वाहके लिये उन छूटोंकी नितान्त आवश्कता रहती है, किन्तु तेरापन्थी तो इसे मिथ्या बतलाते है। भगवानने साधुओंको जो छटें दी हैं वे छूटें उनके संयमी जीवनका अङ्ग हैं इसलिये धर्म हैं। श्रावककी छूटें उसकी अपनी बनायी हुई छूटें हैं—उसके गार्हस्थिक जीवनकी अङ्ग हैं, उसके असंयम वृद्धि एवं पोषणके कारण हैं अतः पाप हैं। एककी छूटें धर्मके यथोचित पालनके लिये आवश्यक हैं, दूसरेकी छूटें गृहस्थीमें अधिकाधिक मुग्ध एवं लिप्त होनेके लिये ही हैं इसलिए दोनोंमें आकाश पातालका अन्तर है। साधुको दी हुई छूटें धर्मकी पोषक हैं—उनमें संयम-रक्षाका गम्भीर हेतु रहा हुआ है, परन्तु श्रावककी रखी हुई छूटें संयम धर्मकी बाधक और इसलिए आत्म घातक हैं। जो जो क्रियाएँ संयमी जीवनकी बाधक हैं उनका भगवानने पूर्ण निषेध किया है और इसलिये श्रावककी छूटोंमें पाप ही ठहरता है। अन्य सम्प्रदाय वालोंसे तेरापंथियोंका मत-पार्थक्य इस विषयमें भी है, पर न्याय दृष्टिसे देखनेसे सत्यासत्यका निर्णय होगा।

(५) जीव जीवे ते दया नहीं, मरे ते हो हिंसा मत जाण।
मारणवालाने हिंसा कही, नहीं मारे ते दया गुणखान हो॥

कोई जीव जीवित रहता है यह दया या अनुकम्पा नहीं है। जीव अपने अधिकार या स्वोपार्जित कर्मके बल पर ही जीवित रहता है। जब तक आयु समाप्त नहीं होता किसीकी ताकत नहीं किसी जीवको मार दे या उसका जोना बंद कर दे। इसलिये कोई जीव जीवित रहता है तो उसमें किसीका अहसान नहीं। इसी प्रकार किसी जीवका मरजाना ही हिंसा नहीं है क्योंकि जीव अपने २ कर्मोदयसे मरते ही रहते हैं। जीवन और मरण तो इस संसार की नित्य वस्तुएँ हैं।

हिंसाका पाप तभी लगता है जब मनुष्य खुद किसी जीवकी घात करता है या घात करनेका निमित्त या सहायक कारण होता है। अपनेसे मारे या घात किये गये जीवोंके लिये ही कोई उत्तरदायी ठहर सकता है। किसी जीवको सर्वथा सर्व प्रकारसे न मारनेका त्याग करना ही सबसे बड़ी दया है। अहिंसाको ही भगवानने पूरी दया बतलाया है। जैसे ही मनुष्य अहिंसाका व्रत अङ्गीकार करता है और उसका पूर्ण पालन करने लगता है वसे ही वह संसारके समस्त जीवोंके लिए अभय दाता हो जाता है। जीवोंको उससे किसी प्रकारके भयकी आशंका नहीं रह जाती। मन, वाणी और शरीरमें अहिंसाका पालन करना, दूसरोंसे हिंसा न कराना और हिंसा करने वालेका अनुमोदन, सहयोग न करना—यही सबसे बड़ी दया है। अभयदान सबसे बड़ी दया है। इससे बढ़कर दयाकी कल्पना नहीं की जा सकती। सब जीव सुखके लिये लालायित हैं, दुःख सबको अप्रिय है, मृत्युसे सब कोई भय खाते हैं इसलिए जब कोई नहीं मारनेकी प्रतिज्ञा करता है तो वह जीवोंके सबसे बड़े भयको दूर करता है, अपनी ओरसे कोई भयकी आशङ्का उनके लिए नहीं रहने देता। इससे बढ़कर दयाका आदर्श और क्या होगा ?

जैन मतके अनुसार सब जीव समान हैं। इनकी दृष्टिमें एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके जीवोंमें कोई फरक नहीं। एकके सुखके लिये दूसरे को दुःख पहुंचाना इनकी दृष्टिमें अनुचित और पाप जनक है। सुखेच्छा की दृष्टिसे सभी जीव सदृश हैं इसलिए पंचेन्द्रियके सुखके लिये एकेन्द्रियकी घात करना, राग द्वेषके अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसीलिए साधु सचित्त वस्तुओंके दानका उपदेश नहीं दे सकते और न अनुमोदन ही कर सकते। जहां एक जीव दूसरे जीव पर झपट रहा हो वहां साधु निर्विकार चित्तसे तटस्थ रहते हैं। वे एकको डराकर दूसरेको बचानेकी चेष्टा नहीं कर सकते। बिल्ली चूहे पर झपट रही हो तो साधु बिल्लीको डरा कर भगानेकी चेष्टा नहीं करेंगे न वे यह चाहेंगे कि चूहा ही मारा जाय। ऐसे अवसर पर वह ध्यानस्थ होकर निर्विकार चित्तसे बैठे रहेंगे।

न्यायकी दृष्टिसे भी ऐसा ही करना उचित है। एक जीवको जबरदस्ती से भूखा रखकर, दूसरे जीवको बचाना न्यायकी दृष्टिसे असंगत है। यह तो ठीक वसा ही है जैसा कि एकको चपत लगाना और दूसरेका उपद्रव दूर करना। ऐसे राग द्वेषके कार्योंसे साधु कोसों दूर रहते हैं। जहां दो जीवोंमें आपसमें कलह हो रहा हो वहां साधु यदि उपदेश द्वारा कुछ कार्य कर सकते हैं तो ही करते हैं। धर्म उपदेशका है, न की जबरदस्तीका। जहां उपदेश नहीं दिया जा सकता या उसका असर होना असम्भव मालूम होता है वहां साधु रागद्वेष रहित हो मौन धारण करते हैं या वहांसे उठकर चले जाते हैं। जैन धर्म नहीं चाहता कि किसीके दुर्गुणोंको भी जोर जबरदस्तीसे हटाया जाय। स्वामी भीषणजने ठीक ही कहा है:—

"मूला गाजर ने काचो पानी,
कोई जोरी दावे ले खोसी रे।
जे कोई वस्तु छुडावे बिन मन,
इण विधि धर्म न होसी रे॥
भोगी ना कोई भोगज रूंध,
बले पाडै अन्तरायो रे।
महा मोहनी कर्म जु बाँधे,
दशाश्रुतखन्धमें बतायो रे॥"

हरी वनस्पति और सचित्त पानी पीनेमें एकेन्द्रिय जीवकी हत्या होती है अतः पाप है परन्तु अगर कोई हरी वनस्पति और सचित पानी पीता हो तो उसे जबरदस्ती छीन लेना जैन दृष्टिसे धर्म नहीं है। इसी प्रकार अहिंसाका सिद्धान्त है—अहिंसा माने यह नहीं कि हिंसा-प्रेमियोंकी हिंसा को हिंसा द्वारा अर्थात् बलपूर्वक रोका जाय। इस प्रकारकी जबरदस्ती या बलप्रयोगमें तो हृदयका परिवर्त्तन नहीं है। बिना मन कोई काम करा लेनेमें धर्म नहीं है। वैसे तो यह संसार ही हिंसामय है, जगह जगह हिंसाएँ हो रही हैं, परन्तु उन्हें रोकना असंभव है। मनुष्यको स्वयं मन वचन और

कायासे अहिंसक होना चाहिए यदि वह स्वयं अहिंसक हैं तो उसके सामने हिंसाएँ होती रहें उसका पाप उसे नहीं है। हिंसा करने वाले, कराने वाले व अनुमोदन वालेको ही हिंसाका पाप होता है न कि देखने वालेको। यदि देखने वालेको ही हिंसा हो तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र और अनन्त बल सम्पन्न अरिहन्त भगवान् एवं त्रिकालदर्शी केवली कैसे अहिंसक वन सकते। अतः साधु हिंसा के कार्यों को देख कर चलचित्त नहीं होते, परन्तु विवेक पूर्वक तटस्थता धारण किये रहते हैं। बल का प्रयोग कर जीव घात को रोकना उनके लिये पाप हो जाता है। जैन शास्त्रों में तो यहां तक कहा है कि किसी भोगी को भी भोगों से जबरदस्ती बञ्चित करना महा बलवान मोहनी कर्म को बांधना है। इसी न्यायसे साधु जीव मात्र का आपसी कलह, मार काट आदि में बल प्रयोग कर वाधा नहीं देते, उपदेश द्वारा समझा कर उसे निवृत्त करना ही उनका धर्म व कर्तव्य है। न्यायकी दृष्टिसे भी ऐसा ही उचित प्रतीत होगा। अनुचित पक्षपात या राग-द्वेष समस्त कर्मोंका मूल है। कुछ लोग इस बातका रहस्य न समझ अन्य धर्मियोंके देखादेख दयाका स्वरूप ही दूसरा बतलाते हैं। उनकी यह भूल, शास्त्रकी दृष्टिसे स्पष्ट प्रतीयमान है।

इस प्रकार बल या जवरदस्तीसे काम लेनेसे जहां रक्षकको कोई लाभ नहीं होता उल्टा अन्तराय उपस्थित करनेसे पापकर्म लगता है वहां आततायीका भी कोई सुधार नहीं होता। बिना मन धर्म पालन करवा लेनेसे ही पाप दूर नहीं होता।

(६) सुपात्र दानसे धर्म होता है। कुपात्र दानमें संसार कीर्ति भले ही हो धर्म पुण्य नहीं है। जैन शास्त्रोंमें दश दानोंका वर्णन आया है परन्तु उन सभीमें धर्म न समझना चाहिये। ग्रह उपग्रहादिकी शान्तिके लिए जो धन धान्यादि दिया जाता है वह भी दान है और विवाह-शादीके अवसरपर दहेज, मुकलावादि दिया जाता है वह भी दान है परन्तु इनमें कोई धर्म नहीं है। देने मात्रही में धर्म समझना भूल है। दानसे धर्म लाभ करना

हो तो विवेकका सहारा लेना चाहिए। दान सत्पात्रके लिए ही है। कुपात्र को दान देना धर्मके स्थानमें पापोपार्जन करना है। जो जीव सर्वथा हिंसा नहीं करता, सर्वथा झूठ नहीं बोलता, सर्वथा चोरी नहीं करता, संपूर्ण शीलकी रक्षा करता है, और बिलकुल परिग्रह नहीं रखता वही सुपात्र है। ऐसे सुपात्रको दान देना सुक्षेत्रमें बीज डालनेकी तरह है कि जिसका फल बड़ा अच्छा होता है। जिनमें ये गुण नहीं वे कदापि सुपात्र नहीं। उन्हें दान देना धर्मका कारण नहीं हो सकता, सांसारिक कर्तव्य भलेही हो पर सांसारिक लाभालाभसे धार्मिक लाभालाभ विभिन्न है।

दान देनेमें दयाका उल्लंघन न हो इसका भी पूरा ख्याल रखना चाहिये। जिस दानसे दयाका उल्लंघन होता हो वह दान सच्चा दान नहीं है। स्व० दार्शनिक कवि श्रीमद् राजचन्द्रने एक जगह ठीक ही कहा है:—

सत्य, शीलने, सघलां दान, दया होइ ने रहयां प्रमाण।
दया नहीं तो ए नहीं एक, बिना सूर्य किरण नही देख ॥

अत: दयाकी रक्षा करते हुए ही दान देना चाहिए। जिस दानमें जीवोंकी हिंसा रही हुई हो उस दानको न करना चाहिए। इसलिए सजीव धान्यादिका दान करना हिंसाका कार्य होनेसे पाप मूलक है। साधु ऐसे दानको स्वयं ग्रहण नहीं करते और न ऐसे दानकी प्रशंसा या सराहना करते हैं। भगवानने ऐसे सावद्य दानकी जगह जगह निन्दा की है और इसे आत्मघातक बतलाया है।

जिस दानसे आत्मिक कल्याण या धर्म, पुण्य होना बतलाया गया है वह दान दूसरा ही है। सच्चे जैन धर्मके रहस्योंको बतला कर किसीको सन्मार्ग पर लाना—उसे सम्यक्तीत-सच्चे दर्शनको मानने वाला, तथा सत् चारित्री बनाना यही धर्म-दान है। सच्चे साधु मुनिराजको उनके तपस्वी जीवनके योग्य शुद्ध कल्प वस्तुओंका दान देना यह भी शुद्ध दान है। ऐसे दानसे नवीन कर्मोंका आना रुकता है, कर्मोंकी निर्जरा होनेसे धर्म पुण्यका संचार होता है। ऐसा दान सम्पूर्ण निर्वद्य होता है। भगवान खुद

ऐसे दानकी आज्ञा करते हैं, इसके अतिरिक्त जो सावद्य दान हैं—जिनमें असंयति जीवोंका पोषण होता है या जिनमें असंयति जीवोंकी घात होती है या दूसरे पाप बढ़ते हैं वैसे दान धार्मिक दृष्टिसे सर्वदा अकरणीय है सांसिरिक दृष्टिसे कोई करे तो वह दूसरी बात है।

तेरापंथी साधुवोंके तपस्याका दिग्दर्शन।

तेरापंथी साधु बहुत उग्र तपस्याएँ करते हैं। श्री मुखांजी नामकी एक साध्वीने निरन्तर २६७ दिनोंका उपवास किया था। इस लम्बे उपवासमें उन्होंने उबाली हुई छाछके उपरका पानीके अतिरिक्त कोई आहार नहीं लिया। कई साधुओंने केवल जल पर ही १०८ दिन निकाले हैं। एक साध्वी आचार्याने २२ दिन बिना अन्न जलके निकाले थे। तेरापन्थी साधुओंका आचार निष्ठा उनका संगठन व नियमानुवतिता तथा तपस्या मय जीवन-जो उन्हें देखते हैं, सबको मोहित करते हैं।

तेरापन्थी सम्प्रदायके साधु साध्वियोंमें बहुतसी महत्वपूर्ण तपस्याएँ हुई है। यहां तो दृष्टान्त स्वरूप केवल थोड़े से ही तपस्याओंका वर्णन दिया जाता है। रात्रिमें जैन साधु साध्वियाँ कोई भी चीज नहीं खाते यह पहिले कह चुके हैं। उपवासका पारण वे सूर्योदयके बाद ही करते हैं। उपवास करते हुए दिनके समय गरमजल या छाछके उपरका जल ही ले सकते हैं, और कुछ नहीं।

प्रथम दो आचार्योंके शासनकालमें छह महिने तकका निरन्तर तपस्या नहीं हुई थी। तृतीय आचार्य महाराज श्री रायचन्दजीके शासनकालमें पहले पहिल छह महीनेका निरन्तर उपवास स्वामी पृथ्वीराजजी महाराजने किया। वे मारवाड़ रियासतके बाजोलिया ग्रामके रहनेवाले थे। उनकी दीक्षा सं० १८६६ में महाराज श्री हेमराजजी के हाथसे हुई थी। वे विवाहित थे और स्त्रीको परित्याग कर उन्होंने दीक्षा ली थी। दीक्षाके बाद पहिले छह वर्षोंमें तो वे बीच बीचमें उपवास किया करते थे। परन्तु

सं० १८७३ से प्रत्येक चातुर्मासके समय उन्होंने बड़ी-बड़ी तपस्याएँ करनी शुरू की। उनकी तपस्याओंकी सूची नीचे दी जाती है :—

सम्वत	चातुर्मास जगह	निरन्तर उपवास
१८७३	सिरियारी	४० दिन
१८७४	गोगुन्दा	८२ ,,
१८७५	पाली	८३ ,,
१८७६	देवगढ़	१०६ ,,
१८७७	पुर	१२० ,,
१८७८	अमेट	६६ ,,
१८७६	पुर	१०० ,,
१८८०	पाली	६० ,,
१८८१	पाली	७५,२१ ,,
१८८२	पाली	१०१ ,,
१८८३	कांकरोली	१८६ ,,

अन्तिम १८६ दिनोंका उपवास सं० १८८३ के जेठ बदी में आरम्भ किया था। प्रथम दिनके उपवासमें ही उन्होंने आचार्य श्री रायचन्दजी महाराजके सामने छः महीनेका निरन्तर उपवास एक साथ प्रत्याख्यान कर लिया। दो अन्य साधुओंने भी ऐसे ही उपवास पचखे। इनमें एकका नाम श्री वर्द्धमानजी महाराज और दूसरेका नाम श्री हीरालालजी महाराज था।

इस लम्बे उपवासके समाप्त होनेके एक महीने बाद ही स्वामी पृथ्वीराजजी महाराजका स्वर्गारोहण हो गया।

स्वामी पृथ्वीराजजीके समसामयिक साधु श्री शिवजी महाराज भी बड़े उग्र तपस्वी थे। वे बाफना वंशके ओसवाल थे। उनका जन्म मेवाड़के लव ग्राममें हुआ था। उनके उपवासोंका विवरण निम्न प्रकार है।

उपवास दिन	संख्या	उपवास दिन	संख्या
१	४१४	१५	३
२	२२	१६	२
३	३४	३०	१२
४	८	३२	१
५	११	३६	२
६	७	४०	१
७	३	४५	६
८	६	५०	२
६	३	५५	१
१०	३	६०	५
११	३	७५	२
१२	३	६०	१
१३	२	१८६	१
१४	३		

इन तपस्वी साधुका देहावसान चैत सुदी ७, सं० १६११ में हुआ। एक सो वर्ष पहिले किए हुए उपवासोंमें से ये कुछ नमूने हैं। हालके तपस्वियोंमें श्री चुन्नीलालजी महाराज, श्री रणजीतमलजी महाराज तथा श्री आशारामजी महाराजके नाम प्रमुख तपस्वियोंमेंसे हैं।

स्वामी श्री चुन्नीलालजी महाराज सरदार सहर (बीकानेर) के थे। वे नाहटा वंशके ओसवाल थे। सं० १६४० में उनकी दीक्षा हुई थी। सं० १६४४ से उन्होंने एकान्तर (एक दिनके बाद एक दिन) तपस्या करनी शुरु की। छः वर्षों तक यह एकान्तर तपस्या जारी रही। सं० १६५० से उन्होंने बेले २ तपस्या शुरू की। दो दिनकी तपस्याके बाद पारणा करते और फिर दो दिन उपवास करते। इस प्रकार एक मासके

समयमें दस दिन आहार लेते बाकी २० दिन दो दो दिनका निरन्तर उपवास करते। इस प्रकारकी तपस्या वे निरन्तर २३ वर्षों तक करते रहे अर्थात् सं० १६७२ तक यह तपस्या-क्रम जारी रहा। इसके बादसे उन्होंने तेले तेले तपस्या करना शुरू किया अर्थात् तीन दिन लगातार उपवासके बाद एक दिन आहार करते। यह तपस्या उन्होंने ३।। वर्षों तक की। इन तपस्याओंके सिवा उन्होंने और भी तपस्याएँ कीं थीं। उनका विवरण निम्न प्रकार है :—

उपवास दिन	संख्या	उपवास दिन	संख्या
१	६००	१०	१
२	३६	११	२
३	३६	१२	१
४	४४	१३	१
५	२५	१४	२
६	३	१५	१
७	२	१६	१
८	१	१७	१
६	१	१८	१

स्वामी चुन्नीलालजीने इन तपस्याओंके अतिरिक्त 'लघु संघकी' तपस्या भी की। इस तपस्याकी चार श्रेणियाँ होती हैं। प्रत्येक श्रेणीके १८७ दिनों में १५४ दिन उपवास और ३३ दिन आहार ग्रहणके रहते हैं। प्रथम श्रेणीमें पारणेके दिन तपस्वीने विगह लिया था। दूसरी श्रेणीमें विगह नहीं लिया, तीसरी श्रेणीमें पारणेके दिन उन्होंने लेपका प्रयोग नहीं किया।

'लघु संघ' तपस्या बड़ी ही कठिन तपस्या है; इसमें उपवाससे आरम्भ कर क्रमशः ६ दिनके निरन्तर उपवास करने तक पहुंच जाना पड़ता है। उपवास, बेले, तेले आदि प्रत्येकके बाद एक दिन पारण करना पड़ता है।

निरन्तर ६ दिनकी तपस्या कर चुकने पर तपस्वीको तपस्या-क्रम बदलना पड़ता है और फिर उलटे चलकर अन्तमें एक उपवास तक आकर तपस्याका अन्त करना होता है ।

जो इस तपस्याको चार बार कर चुकता है वह बहुत ही उग्र तपस्वी समझा जाता है । तीन श्रेणियोंका वर्णन ऊपर आ चुका है । चौथी श्रेणीमें पारणोंके दिन सिर्फ उड़दके बाकले और जल लेना पड़ता है । स्वामी चुन्नीलालजीने तीन श्रेणियों तक इस तपस्याको पूरा कर लिया, परन्तु चौथी श्रेणीको पूरा करनेके पहिले ही उनका देहान्त हो गया । तेरापंथियोंके एक अन्य साधु हुलासमलजी महाराजने चतुर्थ, प्रथम तथा तृतीय श्रेणी तक इस तपस्याको पूरा किया परन्तु द्वितीय श्रेणीका तप आरम्भ न कर सके । ३५ वर्षके साधु जीवनमें साधु चुन्नीलालजी के ८००० दिन उपवास के अर्थात् लगभग २२ वर्ष तपस्याके रहे ।

अब स्वामी रणजीतमलजी तथा आशारामजीकी तपस्याओंका वर्णन देकर इस प्रकरणको समाप्त करेंगे ।

स्वामी रणजीतमलजी का जन्म सं० १६१८ में हुआ था । वे मेवाड़के पुर ग्राममें जन्मे थे और चौथमलजी बनौलियाके पुत्र थे । चौथमलजीने आचार्य श्री मघराजजी स्वामीके हाथसे दीक्षा ली थी । खुद चौथमलजी भी उग्र तपस्वी थे । उन्होंने १६५४ में छः महीनों तककी तपस्या की । उनका स्वर्गारोहण सं० १६५६ में हुआ । साधु रणजीतमलजी भी योग्य तपस्वी निकले । सं० १६७४ से आरम्भ कर उन्होंने कभी लगातार दो दिन आहार नहीं लिया । वे बड़े ही विनयशील तपस्वी थे । उनका अन्तिम उपवास निरन्तर ६० दिनका था । आषाढ़ सुदी २ सं० १६८६ के दिन वर्तमान आचार्य श्री श्री कालुरामजी महाराज जब सरदार शहर पहुंचे उस समय रणजीतमलजीने पारण किया था, एवं उसी पारणेके दिन ही आचार्य महाराज से संथारा करनेकी आज्ञा देनेकी विनती की । परन्तु पूज्य जी महाराजने उन्हें संथारेकी आज्ञा न दी । निराश न होकर स्वामी रणजीतमल

जी तपस्या करते रहे, और जब कभी मौका आया संथारेके लिये अनुमति मांगते रहे। भाद्र सुदी २ को उनकी ६० दिनकी तपस्या समाप्त हुई। इन ६० दिनोंमें उन्होंने २१ दिन तक तो जल भी ग्रहण न किया था। भाद्र सुदी २ को लगभग ७॥ बजे सुबह उन्हें संथारेकी आज्ञा दी गयी और १॥ घंटेके बाद उनकी आत्मा इस नश्वर शरीरको छोड़कर स्वर्ग सिधार गयी।

उनके उपवासोंका विवरण इस प्रकार है :—

उपवासके दिन	संख्या	उपवासके दिन	संख्या
१	२६७५	२१	१
२	३७	३०	१
३	८	३१	१७
४	११	४५	१
५	१०	४७	१
७	२	५२	१
८	१	६०	२
१०	१	१०१ (गोगुंदामें)	१
११	१	१८२ (राजनगरमें)	१
१५	१		

साधु आशारामजीका जन्मस्थान मारवाड़ राज्यका बालोतरा ग्राम था। वे ओसवाल जातिके थे और उनके पिताका नाम सूरजमलजी भंडारी था। इनका विवाह हो चुका था परन्तु एक बलवान आत्माके लिये सांसारिक बन्धन तोड़ना कोई कठिन काम नहीं। आपकी दीक्षा सं० १६७० की श्रावण सुदी ७ के दिन हुई थी। आपकी तपस्याका विवरण इस प्रकार है।

उपवास दिन	संख्या	उपवास दिन	संख्या
१	१३६७	११	२
२	६३०	१२	३
३	१११	१३	१
४	१४	१५	१
५	२५	२५	१
६	२	३०	१
७	२	३१	२
८	३	३५	१
९	१	४१	१
१०	१		

इसके अतिरिक्त उन्होंने ६ वर्षों तक एकान्तरकी तपस्या की और ६ वर्षों तक बेले २ की तपस्या। ७३ दिनकी लगातार तपस्या कर चुकने पर सं० १९९० मिति चैत वदी ७ के दिन चाडवासमें आपका स्वर्गारोहण हो गया। तपस्याके ५९ वें दिनसे उन्होंने जलको छोड़ और सब चीजोंके खाने पीनेका त्याग कर दिया था। अन्तिम ७ दिनोंमें तो उन्होंने जल तकका भी त्याग कर दिया। गृहस्थाश्रममें भी उन्होंने ३० दिनकी तपस्या तथा अन्य फुटकर तपस्याएं कीं थीं।

उपरमें जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदायके साधुओंकी तपस्याका कुछ वर्णन दिया गया है।

यहां यह भी बतला देना आवश्यक होगा कि इन तपस्याओंका उद्देश्य एक मात्र आत्मिक कल्याण ही है। पाठक, सामाजिक, राजनैतिक तथा ऐसे ही अन्य उद्देश्योंसे किए गये उपवासोंसे अवश्य परिचित होंगे परन्तु जैनेतर जनताको शायद यह मालूम न होगा कि जैनियोंके उपवास इनसे कहीं ऊँचे उद्देश्यके लिए किये जाते हैं। आत्म कल्याण

और कर्मों से छुटकारा पानेके लिये ही उनके उपवास हैं। जीवात्माका कर्मों के साथ जो संयोग रहा हुआ है उस संयोगमें से आत्म-तत्वको उसके असली रूपमें अलग करनेका काम तपस्या ही करती है। जैनी लोग सांसारिक, सामाजिक या राजनैतिक उद्देश्यको सफल करनेके लिए उपवास नहीं करते। जैन शास्त्रोंके अनुसार ऐसे उपवास आत्माको आत्मिक कल्याण की ओर बढ़नेमें, हानिके अतिरिक्त कोई लाभ नहीं पहुंचाते। ऐसी तपस्याओंमें जो कष्ट उठाना पड़ता है यद्यपि वह सम्पूर्ण व्यर्थ नहीं जाता तथापि उससे जितना लाभ मिलना चाहिए उसका सहस्रांश भी नहीं मिलता। यह तो हीरेको कौड़ियों के मोल बेचना है। पाठको! ऐसी तपस्याएं केवल साधु ही नहीं करते परन्तु इस सम्प्रदायके श्रावक और श्राविकाओंमें भी प्रचलित हैं। चातुर्मासमें जहां जहां तेरापन्थी साधु साध्वियां रहती हैं वहां श्रावक श्राविकाओंमें बड़े उमंगसे बड़े आनन्दसे कठोर व दुःसाध्य तपस्या होती है।

तेरापन्थी साधुओंकी नियमानुवर्तिता

तेरापन्थी संप्रदायमें नियमानुवर्तिता व संगठन पर पूर्ण ध्यान दिया जाता है। समस्त साधुसाध्वियोंको निर्दिष्ट नियमोंका सम्यक् पालन करना पड़ता है। शिथिलाचारको प्रश्रय नहीं दिया जाता। साधुका उद्देश्य आत्मकल्याण है। वे अपनी संयममय जीवनयात्राके निर्वाहार्थ सर्वथा शास्त्रोक्त रीतिसे चलते हैं। तेरापन्थी सम्प्रदाय साधु-समाजको उनके गुणोंके कारण ही पूजनीय एवं वन्दनीय समझती है अतः उनके गुणोंमें कोई फरक न पड़े इसलिये साधु व श्रावक समाज सर्व प्रकारसे साधु समाजके प्रत्येक कार्य-कलाप पर तीक्ष्ण दृष्टि रखता है। जिनके चरणों पर श्रावकोंका मस्तक स्वतः भक्ति भावसे नत होगा उनका आदर्श, उनका चरित्र, उनका आचार उस उच्च पदके योग्य बना रहे यही भावना बलवती रहती है। इनके ऐसे ही कुछ नियमोंका परिचय नीचे दिया जाता है।

(१) साधु, साध्वी अपने दैनिक कार्यके लिये साधु, साध्वीके अतिरिक्त किसी भी श्रावक या अन्य जनकी सहायता नहीं लेते। तेरापन्थी साधु पैदल तथा नग्न पैर चलते हैं, कोई यान वाहनका उपयोग नहीं करते। अपना बोझ भार भी स्वयं ही ले जाते हैं। स्वयं पैसा देकर या दूसरोंसे दिलाकर रेल, मोटर आदि यानवाहनका सहारा लेना परिग्रहत्याग व्रत एवं अहिंसा व्रतका भङ्ग करना है। ईर्या समितिका बाधक है। इस तरह नाना प्रकारके दोष इस यानवाहनको उपयोगमें लानेसे होते हैं। तीर्थङ्कर देवने ऐसा करनेकी आज्ञा नहीं दी है।

(२) तेरापन्थी साधु साध्वी किसी भी गृहस्थसे पत्र व्यवहार नहीं करते। डाक, तार, दूत या आदमी मारफत कोई पत्र किसीको नहीं भेजते। डाक, तार, हवाई जहाज अथवा अन्य साधनों द्वारा पत्रादि देना, व्यय एवं हिंसा जनक है।

(३) तेरापन्थी साधु किसी एक जगह साधारणतया एक माससे अधिक नहीं रहते और वर्षा ऋतुमें (चातुर्मासमें) चार मास (श्रावणसे कार्तिक पूर्णिमा) तक एक जगह ठहरते हैं। जहां एक मास रहना होता है वहां फिर दो मासके बाद ही आ सकते हैं, पहिले नहीं। जहां एक चातुर्मास रह चुके हैं वहां दो चातुर्मासके अनन्तर ही चातुर्मासमें रह सकते हैं। किन्तु ग्रामानुग्राम विचरते हुए ऐसे क्षेत्रोंमें एक रात रहनेकी शास्त्रोंकी आज्ञा है और वैसा ही तेरापन्थी साधु करते हैं।

(४) तेरापन्थी साधु अपने पुस्तकादि उपकरण जहां जाते हैं वहां स्वयं साथ ले जाते हैं। दूसरे गृहस्थके सुपुर्द नहीं छोड़ते। शास्त्रानुसार प्रत्येक जैन साधु को अपने उपकरण, वस्त्र, पात्र, कंबल पुस्तकादिकी प्रतिदिन देखभाल करनी चाहिये जिससे यह मालूम हो जाय कि उन उपकरणों से कोई जीवजन्तुकी विराधना न हुई हो। यदि साधु साध्वी किसी भण्डार या गोदाममें पुस्तकादि रखते रहें तो दैनिक पडिलेहना (निरीक्षण) नहीं हो सकती एवं यह शिथिलता शास्त्र-मर्यादाका उल्लंघन करना है।

(५) साधुके लिये परिग्रह रखना मना है। जैन मतानुसार काच भी परिग्रह है। इसलिये तेरापन्थी साधु चश्मा ऐनक, (Spectacles) नहीं रखते, अन्यान्य धातु निर्मित वस्तुओंकी तो बात ही दूर रही। साधुके लिये शास्त्रमें वस्त्रके विषयमें भी विधि नियम है। साधु सफेद वस्त्रका ही यथा-परिमाण व्यवहार करते हैं। निर्दिष्ट मूल्यसे अधिक मूल्यके वस्त्रादिका दान ग्रहण नहीं करते। अपने लिये कोई खाद्य एवं पानीय वस्तु, वस्त्र, पुस्तक, कागज तैयार नहीं कराते, मोल नहीं खरीदाते या अपने यहां लाकर दिया हुआ भी पदार्थ नहीं लेते।

(६) तेरापन्थी साधु अपने शिरके केश तथा दाढ़ी मूछें उस्तुरे या कैंचीसे नहीं उतराते। उन्हें सालमें दो बार केशोंका लोच करना पड़ता है। लोचका परीषह कितना कठोर है यह पाठक अनुमानसे ही समझ सकते हैं।

(७) तेरापन्थी साधु जूती, मोजे, स्लिपर, पादुका आदि कुछ नहीं पहिनते। कड़ी गरमीमें भी उत्तप्त बालू या पहाड़ी जमीन पर और भयानक शीतके समय ठंडी जमीन पर नंगे पैर ही वे विचरण करते हैं।

(८) तेरापन्थो साधु दातव्य-औषधालयसे औषध नहीं लाते। कोई श्रद्धालु वैद्य या डाक्टर अपनी दवाइयोंमें से कोई दवा स्वेच्छासे दान करे तो साधु ले सकते हैं। आवश्यकता होनेसे किसी डाक्टरसे अस्त्रादि मांगकर यदि सम्भव हो तो साधु द्वारा ही अस्त्रोपचार कराते हैं। किसी डाक्टरके द्वारा या अस्पतालमें जाकर दूसरेसे अस्त्रोपचार नहीं कराते।

(९) अहिंसामय जैनधर्मके उपासक तेरापंथी साधु बिजलीका पंखा या हाथ पंखा, बिजलीकी रोशनी, लालटेनकी रोशनी या किसी अन्य प्रकारकी अप्राकृतिक रोशनी या हवाको व्यवहारमें नहीं लाते। सर्दीके समय न तो अग्नि या सिगड़ी घरमें रखते और न अग्नि ताप ही लेते हैं। नदी, कुंआ, तालाबआदिका जल सचित—सजीव होनेके कारण साधु नहीं ले सकते। हिंसा मूलक कोई भी कार्य करना, कराना व अनुमोदन करना, बिलकुल मना है।

(१०) किसी भी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांसारिक या कानूनी व्यापारमें साधु भाग नहीं लेते। नैतिक एवं आत्मिक उन्नति-जनक कार्यमें ही वे अपना समय बिताते हैं। यदि कोई मनुष्य, साधुओंको कोई प्रकारका कष्ट पहुंचाता हो तो साधु उसके विरुद्ध या निजकी रक्षाके लिये राज-दरबार, थाना कचहरी, पुलिसमें इत्तला नहीं देते। स्वयं किसी मामले में साक्षी नहीं दे सकते और न दूसरेसे इस तरहके किसी कार्य में सहयोग ले सकते हैं।

(११) तेरापंथी साधुओंके कोई मठ, मन्दिर, स्थान आदि नहीं हैं। वे तो गृहस्थोंके घरोंमें उनकी इजाजतसे रहते हैं।

(१२) तेरापंथी साधु साध्वी साधारणतया उच्च कुलके महाजन सम्प्रदायसे ही दीक्षित होते हैं। उन्हें आजीवन आचार्य्यकी आज्ञानुसार चलना पड़ता है। प्रत्येक कनिष्ट साधुको उनके ज्येष्ठ साधुकी भी आज्ञा माननी पड़ती है। कनिष्ठता व ज्येष्टता उम्रके अनुसार नहीं किन्तु दीक्षा क्रमके अनुसार ही मानी जाती है।

(१३) माता-पिता गुरुजन तथा पति-पत्नीकी एवं अन्य निकट परि-जनकी लिखित आज्ञा बिना किसीको भी तेरापंथी सम्प्रदायमें दीक्षा नहीं दी जाती। तीव्र वराग्य, संयम-निर्वाह-सामर्थ्य आदि योग्यता देखकर दीक्षित होनेकी दृढ़ लालसा तथा बहुत अरज करने पर आचार्य्य महाराज योग्य दीक्षार्थीको जनसाधारणके सामने दीक्षा देते हैं। जैनधर्मके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंसे सुपरिचित एवं वैराग्य भावनावालेको ही नव वर्षसे अधिक उम्र में दीक्षा दी जाती है।

(१४) उपरोक्त नियमोंके अतिरिक्त आचार्य्योंकी बनाई हुई मर्य्यादा व नियमोंका पालन समस्त तेरापंथी साधु साध्वियोंको करना पड़ता है। किसी साधु साध्वीके नियम भङ्ग करनेपर आचार्य्य महाराज उसे उपयुक्त दण्ड प्रायश्चित्त देते हैं। दण्ड स्वीकार न करनेसे उसे संघमें सामिल नहीं रखा जाता। नियमानुवर्तिताके प्रभावसे ही प्रायः ५०० साधु साध्वी पंजाबसे

दाक्षिणात्य तक व कच्छ गुजरातसे मध्यप्रान्त तक बिभिन्न स्थानोंमें एक सूत्रसे,एक शासनमें, निर्विवाद, एक आचार्य्यकी आज्ञानुसार विचर रहे हैं।

जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी साधुओंकी संख्या

तेरापन्थी सम्प्रदायमें वर्तमानमें १४१ साधु और ३३३ साध्वियां विद्यमान हैं। उनमें १ साधु और ५ साध्वियां चतुर्थ आचार्य्य श्रीमज्जयाचार्य्यके समयके दीक्षित हैं। ५ साधु और १७ साध्वियां पंचम आचार्य्य श्रीमन्मघराजजी महाराजके समयके हैं। २ साधु और ८ साध्वियोंकी दीक्षा षष्ठाचार्य्य श्री माणकलालजी महाराजके समय हुई थी। १८ साधु व ७३ साध्वियां सप्तम आचार्य श्री डालचन्दजी महाराजके पास दीक्षित हुई थीं। वर्तमान आचार्य्यके दीक्षित ११५ साधु व २३० साध्वियां हैं।

इन ४७४ साधुसतियोंमें थली प्रान्तके ६७ साधु व २०६ साध्वियां हैं। मारवाड़के २४ साधु व ४६ साध्वियां हैं। मेवाड़के ३१ साधु व ५७ साध्वियां हैं। हरियाणेके १० साधु व ४ साध्वियां हैं। मालवेके ३ साधु व २ साध्वियां हैं। ढुंढाड़के २ साधु व ८ साध्वियां हैं। पंजाब प्रान्तके ३ साधु व ७ साध्वियां हैं। कच्छ प्रान्तके १ साधु हैं।

वर्त्तमानमें जो १४१ साधु हैं उनमें १०२ साधु अविवाहित अवस्थामें दीक्षित हुए, २० साधु विपत्नीक अवस्थामें दीक्षित हुए, १५ साधु स्त्री सहित साधु मार्गमें दीक्षित हुए और ४ साधुओंने स्त्री परित्याग कर दीक्षा ली। ३३३ साध्वियोंमेंसे ६३ साध्वियोंने कुमारी अवस्थामें ही दीक्षा ली, १९६ साध्वियोंने विधवा अवस्थामें दीक्षा ली, तथा २४ साध्वियां पति सहित और २० साध्वियां पति छोड़ दीक्षित हुई थीं।

यह सब साधु साध्वियां एक आचार्य्यकी आज्ञामें चल रही हैं। गत चातुर्मासमें विभिन्न प्रान्तोंके ८१ शहरोंमें इनका चातुर्मास हुआ। इन सबको अपने दैनिक कृत्योंका लिखित हिसाब आचार्य्य महाराजको देना पड़ता है। स्वयं धर्ममें बिचरते हुए भव्य जीवोंके आत्मिक उद्धारके निमित्त धर्मोपदेश देना ही इनके जीवनका एक मात्र लक्ष्य है।

माघ महोत्सव

यह आचार्य्योंकी दूरदर्शिता का ही फल है कि प्रत्येक वर्ष समस्त साधु साध्वियोंके कार्य्यकलाप, आचार-व्यवहार, योग्यता आदिके निरीक्षणके लिये चातुर्मासके बाद माघ महीनेमें जहां आचार्य्य महाराज विराजते हों वहां समस्त साधु सतियांजी आकर श्री पूज्य आचार्य्यजी महाराजके दर्शन कर उनको अपने २ धर्म-प्रचार कार्य्यका परिचय देते हैं। माघ महोत्सव माघ सुदी ७ को होता है। जो साधु सतियां शारीरिक अशक्तताके कारण या प्रचार कार्य्यके लिये सुदूर प्रदेश विशेषमें आचार्य्य महाराजकी आज्ञासे विचरते रहनेके कारण इस उत्सवमें सामिल होनेमें असमर्थ हों, उनको छोड़ बाकी सब साधु साध्वियां माघ सुदी ७ तक आ पहुंचते हैं। उसी दिन या उसके लगभग ही, भावी चातुर्मासमें कहां-कहां, किन-किन साधु, सतियों को प्रचारार्थ भेजा जायगा यह आचार्य महाराज श्रावकोंके अरज तथा अन्यान्य बातोंको विचार कर स्थिर करते हैं। इस मौके पर बहुत श्रावक-श्राविकाएं जगह जगहसे आती हैं। एक ही जगह सैकड़ों साधु मुनिराजोंका दर्शन कर उनके संगठनका एवं परस्परके विनम्र भावका प्रकृष्ट प्रदर्शन देख हृदय स्वतः भक्ति व वैराग्य रससे प्लावित हो जाता है। जहां आज भाई-भाईमें कलह, पिता-पुत्रमें कलह, स्वजन-ज्ञातिमें कलह, वहां भिन्न-भिन्न स्थानके भिन्न-भिन्न वयस के, भिन्न-भिन्न परिवारके ४००।५०० साधु साध्वी कैसे एक सूत्रमें, एक आचार्य्यकी आज्ञामें, एक भगवद्भाषित धर्मकी छत्रछायामें, मुक्ति कामनाको एकमात्र लक्ष्य बना कर ज्ञान, दर्शन, चरित्रके आधार पर एवं दान, शील, तप, भावनाके बलसे अपनी आत्मोन्नति कर रहे हैं एवं साथ २ भव्यजीवोंको सदुपदेश देकर भव-समुद्रसे तार रहे हैं यह देखने और मनन करनेका विषय है। ऐसे पुनीत अवसर पर इतने पवित्र-मूर्ति महात्माओंके दर्शनसे हृदयके पातक दूरीभूत होते हैं। ऐसे महापुरुषोंकी वाणी सुन कर भव्यजीव कृतार्थ होते हैं। भरत-क्षेत्रमें, त्रितापदग्ध संसारी

जीवोंके कल्याणकामी तेरापंथी साधु-साध्वियां देशके, समाजके, राष्ट्रके, व विश्वके गौरव-रूप हैं।

तेरापंथी साधु समाजमें विद्या प्रचार।

आज कल विद्वानोंका समादर सर्वत्र है। शास्त्रोंका अध्ययन, अध्यापन, व्याख्यान आदिके लिये विद्या चर्चाकी बहुत जरूरत है। परमपूज्य पूज्यजी महाराजाधिराज सकलगुणनिधान बालब्रह्मचारी श्री श्री १००८ श्री कालुरालजी स्वामीके समयमें तेरापंथी साधु सम्प्रदायमें अच्छे २ विद्वान एवं पण्डित मुनिराजोंका प्रादुर्भाव हुआ है। १०।१२ वर्षकी उम्रमें दीक्षित साधुगण अल्प समयके भीतर संस्कृतके इतने ज्ञाता हो जाते हैं कि देखनेसे आश्चर्य होता है। कम उम्रके साधु मुनिराजों द्वारा प्रणीत 'भक्तामर' व 'कल्याणमन्दिर' जैसे स्तोत्रोंके पाद पूर्तिरूप, 'कालु-भक्तामर स्तोत्र' एवं 'कालु-कल्याण मन्दिर' आदि काव्योंको अवलोकन कर बहुतसे विद्वान मुग्ध हुए हैं। श्री पूज्यजी महाराजकी देख रेखमें साधुओंके शिक्षार्थ एक संस्कृत व्याकरणकी रचना हुई है, जो कि एक अपूर्व ग्रन्थ है। वैज्ञानिक शैलीसे समस्त व्याकरणोंका सार लेकर व्याकरण-सूत्र व वृत्ति बनाना कम पांडित्यका काम नहीं।

हम समस्त जैन एवं जैनेतर विद्वानोंसे, दार्शनिक एवं धार्मिक तत्त्वोंके जिज्ञासु एवं खासकर जैन-शास्त्र व साहित्यके अनुसन्धान प्रेमी सज्जनोंसे अनुरोध करते हैं कि वे जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदायके आचार्य्य महाराज और उनके साधु साध्वीवर्गका दर्शन करें एवं उनके संयम, त्याग, वैराग्य तथा तपस्या मय जीवनमें एक नवीन ज्योति, नवीन आदर्श, और नवीन संगठनका आदर्श सम्मेलन देखकर कृतकृत्य होवें।

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा

२८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता।

सभासे प्रकाशित निम्नलिखित पुस्तकें
बिक्रयार्थ मौजूद हैं :—

जैनतत्त्व प्रकाश भाग १।२ (हिन्दी)
कालु भक्तामर (संस्कृत, हिन्दी अनुवाद सहित)
ज्ञान प्रकाश (गुजराती)
भिक्षु यश रसायन ,,
पंच महाव्रतकी ओलखान ,,
दानदयाकी ओलखान ,,
थोकड़ा संग्रह भाग १ ,,
,, ,, ,, २ (छप रही है)

The Jain Swetambar Terapanthi Sabha
28, Strand Road, Calcutta.

टी० सी० एस० ६०००—२१-१-३६ रत्नाकर प्रेस, कलकत्ता।